सिद्धयोग

संस्थापक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

यो[illegible] एवं आध्यात्म का
प्र[illegible] मासिक

[illegible]:40; अंक :1
[illegible]प्रैल, 2007

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन
सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

(चाणक्य नीति से)

दानेन पाणिर्न तु कंगनेन स्नानेन शुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन।।

(17/11)

हाथों की शोभा दान से होती है, कंगन पहनने से नहीं। शरीर की शुद्धि स्नान करने से होती है, चन्दन के लेप से नहीं। मानसिक तृप्ति आदर–सत्कार से होती है, भोजन से नहीं। ज्ञान से मुक्ति होती है, तिलक–छापे आदि लगाने से मुक्ति नहीं मिलती।

अतिक्लेशेन य चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते ह्यर्था मा भवन्तु मे।।

(16/11)

जो धन अत्यन्त कष्ट अर्थात् चोरी, जारी, हिंसा, लूटमार, दूसरों का अधिकार छीनकर प्राप्त होता है और जो धन धर्म को तिलांजलि देकर धर्म का उल्लंघन करके तथा शत्रु के सामने झुकने से प्राप्त होते हैं, निश्चय ही वे धन मुझे प्राप्त न हों अर्थात् ऐसा धन मुझे नहीं चाहिये।

गुणैरुत्तमतां याति नोच्चैरासनसंस्थितः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते।।

(16/6)

मनुष्य अपने गुणों, सदाचार, शील और चारित्र्य द्वारा उत्तमता को प्राप्त होता है, ऊँचे आसन पर बैठने से नहीं। क्या राजभवन की चोटी पर बैठने से कौआ गरुड़ बन सकता है?

गुणाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः।
पूर्णेन्दु किं तथा वन्द्यो निष्कलंको यथा कृशः।।

(16/7)

सभी स्थानों पर मनुष्यों के गुणों का आदर होता है, विपुल सम्पत्ति होने पर भी गुणहीन मनुष्य का सम्मान नहीं होता। अत्यन्त क्षीण प्रकाश वाला परन्तु निष्कलंक (धब्बों रहित) द्वितीया का चन्द्रमा जैसे पूजित होता है, क्या पूर्णचन्द्र भी वैसा ही वन्दित होता है?

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गंधं वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीन।।

(15/18)

कट जाने पर भी चन्दन का वृक्ष अपनी सुगन्ध को नहीं छोड़ता, बूढ़ा होने पर भी गजराज अपनी कामक्रीड़ायें नहीं छोड़ता, कोल्हू में पेरने पर भी ईख अपनी मिठास को नहीं छोड़ती, इसी प्रकार कुलीन मनुष्य धनहीन होने पर भी अपनी सुशीलता को नहीं छोड़ता।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः।।

दादा गुरुदेव

योगेश्वर प्रभुश्री रामलालजी महाराज

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

वर्ष :40
अंक : 1

अप्रैल
2007

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

श्री रामलाल जी प्रभवे नमः

यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावना:।
भवन्ति संसार सुताश्णाश्शिवा:।।
योगीश्वराणां परमेश्वरम् हरि।
श्री रामलालः प्रभुमीशमाश्रये।।

अर्थात्

जिनकी कृपा के एक कण को पाकर के अत्यन्त पतित भी परम पवित्र होकर संसार सागर से तारने की सामर्थ्य वाला हो जाता है, मैं उन परमेश्वरों के ईश्वर प्रभु श्री रामलाल जी को बार-बार नमस्कार करता हूँ।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष
एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	ईश्वर प्राप्ति के लिए – स्वामी विवेकानन्द	12
4.	योग करने एवं होने में अन्तर – प्रो. चन्द्रहास शर्मा	15
5.	भक्तियोग की श्रेष्ठता – डॉ. अभिराम शर्मा	20
6.	भाव प्रसून – डॉ. सरिता भारद्वाज	23
7.	गीता में अष्टांग योग – श्री जनक कुलश्रेष्ठ	24
8.	कठिनाइयाँ वरदान हैं – श्री अनन्त विहारी	31
9.	मेरे गुरुदेव – श्री केशवदेव उपाध्याय	35
10.	योगस्थ कुरु कर्माणि – श्रीकृष्ण मिश्र	38
11.	जिहि घट दया तहाँ प्रभु आप – डॉ. गणेश दत्त सारस्वत	42
12.	निष्काम कर्मयोग सभी के लिए सम्भव – श्री मयंक लवानियाँ	45
13.	अष्टावक्र गीता – डॉ. विजय सिंह	48
14.	महाभारत में योग विद्या (पुस्तक समीक्षा) – डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी	51
15.	योग और संयोग – वेदव्रत द्विवेदी	53
16.	ऐसा वर दे दो गुरुजी – श्री जगदीश राय बंसल	55
17.	श्री गुरुदेव द्वारा दो परिवारों की प्राणरक्षा – श्री दिनेश शर्मा	56
18.	कैसे बिसार दूँ – श्री मनु शर्मा	59
19.	'योग' परमात्म पिता, 'श्रद्धा' देवी माता है – श्री राजीव कुमार शर्मा	60
20.	आरोग्य चर्चा	61

'नववर्ष विक्रमी सं. २०६४'
पर हम अपने सभी
पाठक गुरुभाई-बहिनों को हार्दिक
शुभकामनाएँ संप्रेषित करते हैं!'
-संपादक

एक प्रति	: रु.	11.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	120.00
द्विवार्षिक	: रु.	210.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	850.00

● हमारा विशेष लेख

मेरे श्री गुरुदेव

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूं यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है, और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता। इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने-अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या है, और उनका स्वरूप क्या है यह एक पृथक लेख का विषय है, फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूं कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं, एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्मित स्वरूप। जगवाला भगवान् श्री कृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद् भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है-

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत,
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्दघन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वही से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट नामदेव आदि के कितने उदाहरण मिलते हैं वह सब के सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं **"यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी"**। इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय गुरुजन परिपूर्ण हैं साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ, सिद्धों के महासिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो, किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो-जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे-से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्मभूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गणमान्य विद्वान महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल-क्रीड़ा करते हुये घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु सम्प्रदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। उसमें सबसे बड़े आश्चर्य की बात यह थी जहाँ-जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे श्री गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गदगद् कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन-चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वे घटनाएँ घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता-पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर-कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुये मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुये किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोकलीला का अनुसरण करते हुये जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन-यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झाड़-खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदाशिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाईं। एक नर-भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर-भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6-6 मील 7-7 मील की दूरी पर कोई-कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुये उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव है और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग चुकी थी। इसका अर्थ यही है-"गुरोस्तु मौन व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः"। अर्थात् गुरुदेव का चुपचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्गुरु तत्व की महत्ता है सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही "कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुम्" की शक्ति रखता है मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दु:खी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव

उमड़ी और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दु:खी प्राणियों को पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधिव्याधियों से पीड़ित दु:खाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में जाग उठी। अतः पुनः संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया–

प्रज्ञाप्रसादमारुह्य अशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुये योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुये व्यक्ति भूमि वालों को देखा किया करते हैं। ठीक उसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य आरम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने अवनी–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य प्रारम्भ किये–

1. योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति– इसमें भी सबसे विशेष बात थी निम्न लिखित साधनों का प्रचार। उनमें उनका एक प्रमुख साधन था, **''जीवन तत्व साधन''** इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको ''वृक'' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़ियों को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों के करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। यह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इस के साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुये बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता का स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है। और उससे उनके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक अध्यात्म में प्रविष्ट हो जाता है। जीवन तत्व साधन की नौ क्रियायें हैं जो बहुत प्रचार में आ चुकी हैं।

2. अमर तत्व साधन– जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है कि जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हों। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुये देखने लग जाते हैं उनका राज–यक्ष्मा रोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उससे उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं। और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व आदि साधन ही लोक–हितार्थ कराया करते थे किन्तु कुछ समय बाद नेती, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का

शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा काम उन्होंने संसार में आकर किया।

3. शक्तिपात दीक्षा— जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है, सिद्धयोग और साधन योग। साधन-योग में मनुष्य साधन करता-करता शनैः-शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है, और सिद्धयोग में सिद्धगुरु से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते है, और वही लोग शक्ति-संचार भी कर सकते है। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घनघोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य-प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते है, यह सभी लोग महासिद्ध है और समय-समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थजनों के सन्मार्ग-दर्शन के लिए संसार में आया करते है। यह लोग सर्वसमर्थ महापुरुष है। यही लोग शक्ति संचार कर सकते है। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सब की तरह एक अनादि महासिद्ध है। उन्होंने संसार में आकर शक्तिपात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनकी कृपा-फल को प्राप्त कर कितने ही सैकड़ों की संख्या में साधु जंगलों में समाधि लगा रहे है, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते है। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक-लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये, और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे है। मेरे गुरुदेव योग-योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते है या जो इस, पवित्र योग-मार्ग के जिज्ञासु है उनको पवित्र योग-मार्ग का अनुयायी बनाकर परम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी भी स्थिति में रहे, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधु है तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिये। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किन्तु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य से देखा कि उनसे बात करते-करते ही श्री गुरुदेवजी वहीं अन्तर्ध्यान हो गये। वह लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठवादिता का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं है किन्तु कोई सामर्थ्यवान् परम योगिराज है। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये, किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को वे लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15-16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुये सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्कराकर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो? किसका अन्वेषण कर रहे हो? उन लोगों ने कहा, ब्रह्मचारी जी?

हमारे एक भाई साधु रूप में अभी–अभी यहाँ थे किन्तु पता नहीं कहाँ चले गए हैं? हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि यहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलालजी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं किन्तु इस आकृति में छिपे हुये सर्व–समर्थ योगिराज हैं। उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं किया और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया, श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिये वह हिमालय से उतरकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिये पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभुजी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः ये नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिलकुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी प्रख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में आकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की कि श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में ही आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्धयोगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं? वह तीन दिन से बिलकुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिलते हैं न डुलते हैं। चलिये आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जावेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज है। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–धीरे उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राणकोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा – बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको कालवश बुलाया है, तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि 'हे प्रभो! हे सर्वशक्तिमान! मेरे रोने का केवल एक ही

आचरण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तरसता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री-पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्दृष्टा श्री प्रभुजी! आपने आकर मुझे कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेश में छिपे ये अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं।

यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ-कुछ समझने लगे। यहीं से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ। पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और कार्य किस प्रकार से हुआ करते हैं।

●●●

सिद्धयोग मासिक (पत्रिका) का विवरण

फार्म नं. 4

1. प्रकाशन का स्थान : श्री सिद्धगुफा, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)
2. प्रकाशन का अवधिक्रम : मासिक
3. मुद्रक का नाम : दासलाल शर्मा
   राष्ट्रीयता भारतीय
   पता श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
4. प्रकाशक का नाम : दासलाल शर्मा,
   राष्ट्रीयता भारतीय
   पता श्री सिद्धगुफा, सवाँई, आगरा (उ.प्र.)
5. सम्पादक का नाम : दासलाल शर्मा
6. स्वत्वाधिकारी : दासलाल शर्मा

मैं दासलाल शर्मा एतद् द्वारा यह घोषित करता हूँ कि उपर्युक्त विवरण मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार सत्य है।

-दासलाल शर्मा

28 फरवरी 2007 कृते, सिद्धगुफा प्रकाशन, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा

• सम्पादकीय

परम गुरुदेव योगेश्वर श्री रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

ईश्वर की भाँति महायोगेश्वरों का भी जन्म व कर्म दिव्य होता है। इस दिव्यता को जो जानता व समझता है वह भी दिव्य हो जाता है तथा मुक्त हो जाता है। किन्तु जन्म–कर्म के इन रहस्यों को हर व्यक्ति जान नहीं सकता। दिव्य दृष्टि सम्पन्न योगीजन ही इन रहस्यों को जानते हैं। योग अमर व अमृत विद्या है, इसी विद्या से मनुष्य बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। इस विद्या का समय–समय पर भगवान् स्वयं प्रचार करते हैं या इनके ही रूप में योगेश्वर सिद्धयोगी भारत भूमि में विद्यमान रहकर प्रचार–प्रसार करते हैं। मध्य काल में भगवान मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ आदि महासिद्धों ने योग विद्या को प्रचारित कर मानव को परम कल्याण की ओर लगाया है। ऐसे अनादि सिद्ध, कल्पान्तजीवी, योगदेह से नित्य हिमालय में वास करने वाले परम कारुणिक सिद्ध महापुरुष श्री रामलाल जी महाराज का नाम विख्यात है। आप अपने भक्तों में साक्षात् महेश्वर के रूप में पूजित हैं। आप योगियों के भी योगी सद्गुरु हैं तथा भक्तों की हर अभिलाषा को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष हैं।

आपके विषय में बहुत समय पूर्व ही **'काकनाडी संहिता'** में आपके योगावतार की भविष्यवाणी की गयी है। आपका परमपावन प्राकट्य गुरुओं की पावन नगरी अमृतसर में विक्रमी संवत् 1845 की चैत्र शुक्ला नवमी बृहस्पतिवार को शुभ लग्न में सर्वमान्य प्रसिद्ध ज्योतिर्विद पंडित गंडाराम जी महाराज के यहाँ हुआ। आपकी माता का पवित्र नाम भागवन्ती देवी था। ब्राह्मणों में सारस्वत वंश प्रसिद्ध वंश है। इसी में जोशी वंश में पण्डित साँईदत्त जी हुए। आप बाल्यकाल से ही भगवत्प्रेमी, परम सदाचारी, आस्तिक व आध्यात्मिक विचारों के थे। बचपन में कई बार कई–कई महीनों तक एकान्तवास व अनुष्ठानों में लगे रहते थे। कठोर तप व स्वाध्याय के फलस्वरूप आप में अलौकिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हो गया। अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्ज्वलित कर देना, वर्षा कर देना आदि–आदि विभूतियाँ आप में सहज रूप में प्रगट रहने लगीं।

आगे आपके दो पुत्र पण्डित कन्हैयालाल व पण्डित सुखदयाल जी हुए। पण्डित सुखदयाल जी बहुत ही दयालु व विद्वान पुरुष थे। इन्हीं परम भाग्यवान पुण्यशील भक्त के यहाँ एक पुत्र ने जन्म लिया, जिनका पावन नाम 'गण्डाराम' रखा गया। आप पंजाब प्रान्त के एक प्रसिद्ध ज्योतिषी के रूप में विख्यात हुए। आप बड़े तेजस्वी महापुरुष थे, जिनकी ख्याति दूर–दूर तक फैल गयी थी। आपकी तपस्या व साधना का परम सुफल यह रहा कि आपके यहाँ भगवान ने महाप्रभु के रूप में प्रकट होकर वंश को प्रकाशित किया और मानवमात्र का उद्धार किया। सदैव मुक्त, नित्यसिद्ध होते हुए भी वे अपने संस्कारी बच्चों के दुःखद्वन्द्व व ताप को देखकर दयार्द्र होकर नाना शरीर अपनी इच्छा से धारण करते रहते हैं। पिताश्री ने आपका पावन नाम 'रामलाल' रखा। चार अक्षर

वाला यह नाम धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष को प्रदान करने वाला है। नित्य कूटस्थ, आत्मस्वरूप में स्थित रहने वाले महायोगी दया से अभिभूत होकर योगी सद्गुरु के रूप में प्रकट होकर दुःख निवृत्ति के एकान्तिक उपाय योग का ज्ञान देते हैं। आपकी शैशवकालीन लीलायें भी परम अलौकिक रहीं। आपके अद्भुत सामर्थ्य को देखकर एक अवतारी के रूप में आपकी ख्याति चारों ओर फैलने लगी। पाँच वर्ष की आयु में पिताजी ने पाठशाला में प्रवेश दिलाया। जिनके श्वांसों में चारों वेद का ज्ञान समाया हुआ हो उसे भला अध्यापक भला क्या पढ़ायेगा? अध्यापक भी आपकी अलौकिक प्रतिभा से आश्चर्य चकित थे। संस्कृत अध्ययन के बहाने से आप चौदह वर्ष की अल्पायु में गृहत्याग कर निकल पड़े। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे, वहाँ विद्याध्ययन करने लगे। एक दिन एक छात्र ने एक चमत्कार देखा। एक भयंकर सर्प अपना फन फैलाये आपके ऊपर छाया किये हुए था, उस छात्र ने भय और आश्चर्य से युक्त होकर इसकी जानकारी अपने साथियों को दी। सभी इस अद्भुत घटना को देखने के लिए एकत्रित हो गये। उन लोगों के वहाँ पहुँचने तक वह सर्प अदृश्य हो चुका था। श्री प्रभुजी निश्चिन्त होकर विश्राम कर रहे थे। इस घटना की चर्चा सर्वत्र फैल गयी। कुछ दिन वहाँ रहने के पश्चात् श्री प्रभुजी हरिद्वार चले गये। कनखल में कुछ समय व्यतीत करने के पश्चात् वे काशी चले गये। उन दिनों काशी के समाज में तन्त्र के बल पर अनाचार होता था। 'भैरवी चक्र' जैसे तांत्रिक प्रयोगों से स्त्री–पुरुष को स्तम्भित कर दिया जाता था। प्रभु जी ने ऐसे अनाचार एवं तन्त्र प्रयोगों को अपने योग बल से समाप्त कर दिया और इस प्रकार की कुप्रथा सदा के लिये मिटा दी गयी। आप पर भी कई तांत्रिक प्रयोग हुए किन्तु सब निष्फल रहे। तीर्थयात्रा करते–करते आप श्रीवृन्दावनधाम आये। वहाँ समस्त बृज क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का भ्रमण करते हुए दाऊजी होते हुए प्रभुजी आगरा जिले में बरहन पहुँच गये। बरहन में आपके दिव्य रूप एवं योग विभूतियों से प्रभावित होकर कई लोग उनके अनन्य भक्त बन गये। आपके पास आने से ही दुःखी जनों की आधिव्याधि मिट जाती। जिसके लिए जैसा कहते वैसा ही हो जाता था। वहाँ से वे सवाँई गाँव आये। गाँव में डा. प्यारेलाल आदि बहुत से आपके भक्त बन गये।

अब श्री प्रभुजी के पास लोगों की भीड़भाड़ रहने लगी। वे गाँव के बाहर निवास करते थे। ग्रामवासियों ने इनके लिए एक गुफा का निर्माण कर दिया, जहाँ वे निर्विघ्नतया समाधि में बैठ सकें। यहाँ श्री प्रभुजी दो–ढाई वर्ष तक रहे। अब इनकी इच्छा नेपाल हिमालय जाने की हुई। इनके भावों को समझते हुए भक्तों ने प्रार्थना की – 'प्रभो! आप हिमालय जाने का विचार त्याग दें। हम आपके बिना अनाथ हो जायेंगे।' श्री प्रभुजी ने कहा – 'हिमालय तो हम जायेंगे ही।' एक दिन प्रातःकाल की वेला में चार बजे गुफा से सूक्ष्म रूप से अणिमा सिद्धि के द्वारा बाहर निकल कर आकाश मार्ग से जाने लगे। गुफा का दरवाजा बाहर से बन्द था। और वहाँ भक्तजन बैठे हुए थे। आकाश मार्ग से जाते हुए उन्हें ग्राम के एक किसान ने देख लिया। श्री प्रभुजी ने उसे अभयमुद्रा में आशीर्वाद देते हुए कहा – 'हम गुफा वाले बाबा हैं। नेपाल हिमालय को जा रहे हैं।' किसान ने गुफा पर आकर सभी को इसकी जानकारी दी। सत्यता जानकर सभी अत्यन्त दुःखी हो गये। श्री प्रभुजी की आकाशवाणी हुई – 'चिन्ता मत करो, दस–बारह वर्ष बाद फिर आयेंगे।' आप हिमालय में अपने गुरुदेव सदाशिव के पास कई वर्ष रहे। उन्हें उनकी आज्ञा हुई – 'पृथ्वी मण्डल पर जाओ, हमारे

बहुत से संस्कारी तुम्हारे द्वारा योगमार्ग में आकर ब्रह्मनाथ को पाकर मेरी चिति शक्ति में समा जावेंगे।

अपने गुरुदेव सदाशिव की आज्ञा मानकर श्री प्रभुजी अवनि मण्डल पर आ गये। अमर सिद्ध योग के प्रचार–प्रसार के लिए आपने कई आश्रमों की स्थापना की। सन् 1921–22 में ऋषिकेश में योग साधन आश्रम की स्थापना की। आपने बीमार व्यक्तियों के लिए अपने मन से कुछ क्रियायें उद्घाटित की जो 'जीवन तत्व साधन' के नाम से भारत में प्रचारित हुई। आपने लाहौर में, अमृतसर में तथा अन्य कई स्थानों पर आश्रम स्थापित किये। अधिकारी योग जिज्ञासुओं को शक्तिपात की क्रिया से कुण्डलिनी जागरण तथा अन्य रहस्यमय क्रियायें आपके संकल्प मात्र से होने लगी। यही परम्परा 'सिद्धयोग' की परम्परा कहलाती है। इस परम्परा में सिद्धयोगी गुरु की इच्छा से साधक के अन्दर विभिन्न अद्भुत क्रियायें स्वतः ही होने लगती हैं। आपके मुख्य शिष्यों में योगीराज मुल्खराज जी महाराज, ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी महाराज, सद्गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज एवं योगी नृसिंहमूर्ति जी थे। प्रधान शिष्याओं में महात्मा ऋषिदेवी जी तथा माता द्रोपदी देवी प्रमुख हुई। ये सभी महान शक्तिसम्पन्न सिद्धयोगी हुए। इनमें सद्गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने आध्यात्म योग का बहुत प्रचार किया। लाखों साधक ध्यान योग की दीक्षा पाकर योग ध्यान में आरूढ़ होकर योग के परम लक्ष्य की ओर बढ़ रहे हैं। श्री प्रभुजी की परम्परा के शिष्य–प्रशिष्य देश विदेश में योग का खूब प्रचार कर रहे हैं। आपने योग जगत को बहुत कुछ दिया, योग समाज आप जैसे महायोगी के दिव्य जीवन पर गर्व अनुभव करता है। आपने अपने योग साधकों को योग का वास्तविक स्वरूप समझाया है तथा निरंतर ध्यान योग के अभ्यास करते रहने की आज्ञा व प्रेरणा दी है। परम गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज सद्गुरु के रूप में सदा प्रकट रहकर शिष्यों के हृदयस्थ अज्ञान ग्रन्थि का भेदन करते हैं। गुरुगीता का निम्न श्लोक दृष्टव्य है –

सच्चिदानंद रूपाय व्यापिने परमात्मने।
नमः श्रीगुरुनाथाय ह्यविद्याग्रन्थि भेदिने।।

अर्थात् श्री गुरुनाथ को प्रणाम करते हैं, जो सच्चिदानन्द स्वरूप हैं, सर्व व्यापक हैं, परमात्मा हैं, जो अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं। महाप्रभु सद्गुरु रूप में इसी प्रकार से शिष्यों के हृदयग्रन्थि का भेदन करते हैं। आनन्दकन्द करुणा वरुणालय महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 119 वाँ प्राकट्य दिवस श्री सिद्धगुफा सवाई धाम में 25, 26 व 27 मार्च को धूमधाम से मनाया जा रहा है। भारत व विदेश में जहाँ–जहाँ उनके भक्त व शिष्य हैं, श्री प्रभुजी का यह परम महोत्सव धूमधाम से मना रहे हैं। आइये! हम सब उनके सच्चे इस महान पर्व को धूमधाम से मनायें। इस पावन बेला में सभी भक्तों व साधकों का श्री प्रभुजी के चरणों में कोटि–कोटि नमन है।

ईश्वर प्राप्ति के लिए

अशुभ ही नहीं शुभ का भी त्याग करना होगा

—स्वामी विवेकानन्द

मैं पहले धर्म जिज्ञासा से नाना सम्प्रदायों में, अनेक देशों में, जिन्होंने दूसरे राष्ट्रों के मार्गों को अपना लिया है, भ्रमण करता था, दूसरों के द्वार पर भिक्षा माँगता था। तब मैं जानता न था कि मेरे देश का धर्म, मेरी जाति का धर्म इतना सुन्दर और महान है। कई वर्ष हुए मुझे पता लगा कि हिन्दू धर्म संसार का सर्वाधिक पूर्ण सन्तोषजनक धर्म है। अतः मुझे यह देखकर हार्दिक क्लेश होता है कि यद्यपि हमारे देशवासी अप्रतिम धर्मनिष्ठ होने का दावा करते हैं, पर हमारे इस महान देश में यूरोपीय ढंग के विचार फैलने के कारण उनमें धर्म के प्रति व्यापक उदासीनता आ गयी है। हाँ, यह कष्ट जरूर है और उससे मैं भली प्रकार अवगत हूँ कि उन्हें जिन भौतिक परिस्थितियों में जीवन–यापन करना पड़ता है, वे अनुकूल नहीं हैं।

वर्तमान काल में हम लोगों के बीच कुछ सुधारक हैं जो हिन्दू जाति के पुनरुत्थान के लिए हमारे धर्म में सुधार या यों कहिए कि उलट–पलट करना चाहते हैं। निस्सन्देह उन लोगों में कुछ विचारशील व्यक्ति हैं, लेकिन साथ ही ऐसे बहुत से लोग भी हैं जो अपने उद्देश्य को बिना जाने दूसरों का अन्धानुकरण करते हैं और अत्यन्त मूर्खतापूर्ण कार्य करते हैं। इस वर्ग के सुधारक हमारे धर्म में विजातीय विचारों का प्रवेश कराने में बड़ा उत्साह दिखाते हैं। यह सुधारक वर्ग मूर्ति पूजा का विरोधी है। इस देश के सुधारक कहते हैं कि हिन्दू धर्म सच्चा धर्म नहीं है, क्योंकि इसमें मूर्ति पूजा का विधान है। मूर्ति पूजा क्या है? यह अच्छी है या बुरी — इसका अनुसन्धान कोई नहीं करता, केवल दूसरों के इशारे पर वे हिन्दू धर्म को बदनाम करने का साहस करते हैं। एक दूसरा वर्ग और भी है जो हिन्दुओं की प्रत्येक रीति–रिवाज में वैज्ञानिकता ढूंढ निकालने का अपार प्रयत्न कर रहा है। सदा विद्युत् शक्ति, चुम्बकीय शक्ति, वायु कम्पन तथा उसी तरह की अन्य बातें किया करते हैं। कौन कह सकता है कि ये लोग एक दिन ईश्वर की परिभाषा करने में उसे विद्युत–कम्पन का समूह न कह डालें! जो कुछ भी हो, माँ इनका भी भला करे। जगदम्बा ही भिन्न–भिन्न प्रकृतियों और प्रवृत्तियों के द्वारा अपना कार्य साधन करती है।

उक्त विचार वालों के विपरीत एक और वर्ग है, यह प्राचीन वर्ग कहता है कि हम लोग तुम्हारी बाल की खाल निकालने वाला तर्कवाद नहीं जानते और न हमें जानने की इच्छा है, हम लोग तो ईश्वर और आत्मा का साक्षात्कार करना चाहते हैं। हम सुख–दुःखमय इस संसार को छोड़कर इसके अतीत प्रदेश में, जहाँ परम आनन्द है, जाना चाहते हैं। यह वर्ग कहता है कि सविश्वास गंगास्नान करने से मुक्ति होती है, शिव, राम, विष्णु आदि किसी एक में ईश्वर–बुद्धि रखकर श्रद्धा–भक्तिपूर्वक उपासना करने से मुक्ति होती है। मुझे गर्व है कि मैं

इन दृढ़ आदर्शवालों के प्राचीन वर्ग का हूँ।

इसके अतिरिक्त एक और वर्ग है जो ईश्वर और संसार दोनों की एक साथ ही उपासना करने के लिए कहता है। वह सच्चा नहीं है। वे जो कहते हैं वह उनके हृदय का भाव नहीं रहता। प्रकृत महात्माओं का आदेश है:

जहाँ राम तहँ काम नहि, जहाँ काम नहि राम।
तुलसी कबहुँ होत नहि, रवि–रजनी इक ठाम।।

महापुरुषों की वाणी हमसे इस बात की घोषणा करती है कि 'यदि ईश्वर को पाना चाहते हो, तो काम–कांचन का त्याग करना होगा। यह संसार असार, मायामय और मिथ्या है। लाख यत्न करो, पर इसे बिना छोड़े कदापि ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकते। यदि यह न कर सको तो मान लो कि तुम दुर्बल हो, किन्तु स्मरण रहे कि अपने आदर्श को कदापि नीचा न करो।' सड़ते हुए मुर्दे को सोने के पत्ते से ढकने का यत्न न करो। अस्तु। उनके मतानुसार यदि धर्म की उपलब्धि करनी है तो तुम्हारा प्रथम कर्तव्य है कि तुम लुकाछिपी का खेल खेलना छोड़ दो। मैंने क्या सीखा? मैंने इस प्राचीन सम्प्रदाय से क्या सीखा? यही सीखा:

दुर्लभं त्रयमेवैतत् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः।।

(विवेक चूड़ामणि 3)

अर्थात् मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुषों का सत्संग इन तीनों का मिलना बहुत दुर्लभ है। ये तीनों बिना ईश्वर की कृपा के नहीं मिल सकते। मुक्ति के लिए सबसे आवश्यक वस्तु है – मनुष्यत्व या मनुष्य के रूप में जन्म, क्योंकि मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य शरीर ही उपयुक्त है। इसके बाद चाहिये मुमुक्षुत्व। सम्प्रदाय और व्यक्तिभेद से हमारी साधन प्रणालियाँ भिन्न–भिन्न हैं। विभिन्न व्यक्ति यह भी दावा कर सकते हैं कि ज्ञानोपार्जन के उनके विशेष अधिकार एवं साधन हैं और जीवन में श्रेणी भेद के कारण उनमें भी विभेद है, किन्तु यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि मुमुक्षुत्व के बिना ईश्वरोपलब्धि असम्भव है। मुमुक्षुत्व क्या है? इस संसार के सुख–दुःख से छुटकारा पाने की तीव्र इच्छा, इस संसार से प्रबल निर्वेद। जिस समय भगवान् के दर्शन के लिए यह तीव्र व्याकुलता होगी उसी समय समझना कि तुम ईश्वर प्राप्ति के अधिकारी हुए हो।

इसके बाद चाहिये ब्रह्मदर्शी महापुरुष का संग अर्थात् गुरु–लाभ। गुरु–परम्परा से बिना व्यवधान के जो शक्ति प्राप्त होती है, उसी के साथ अपना संयोग स्थापित करना होगा, क्योंकि वैराग्य और तीव्र मुमुक्षुत्व रहने पर भी उसके बिना कुछ न हो सकेगा। शिष्य को चाहिये कि वह अपने गुरु को परामर्शदाता, दार्शनिक, सुहृद् और पथप्रदर्शक के रूप में अंगीकार करे। गुरु करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। **श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यो ब्रह्मवित्तमः।** (विवेकचूड़ामणि 33) – जिसे वेदों का रहस्य–ज्ञान है, जो निष्पाप है, जिसे कोई इच्छा न हो,

जो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हो अर्थात् श्रोत्रिय हो, जो केवल शास्त्रों का पंडित ही न हो वरन् उनके सूक्ष्म रहस्यों का भी ज्ञाता हो और जिसे शास्त्रों के वास्तविक तात्पर्य का बोध हो' – वही गुरु होने योग्य है। 'विविध शास्त्रों को पढ़ने मात्र से तो वे चरा तोते बन गये हैं। उस व्यक्ति को वास्तविक पंडित समझना चाहिये जिसने शास्त्रों का केवल एक अक्षर पढ़कर (दिव्य) प्रेम का लाभ कर लिया :

पोथी पढ़ तूती भयो, पंडित भया न कोय।

अक्षर एक जो प्रेम से, पढ़े तो पंडित होय।।

अतः केवल पोथी ज्ञान से पंडित हुए लोगों से काम न चलेगा। आजकल प्रत्येक व्यक्ति गुरु बनना चाहता है। कंगाल भिक्षुक लाख रुपये का दान करना चाहता है। तो गुरु अवश्य ही ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसे पाप छू तक न गया हो। जो अकामहत हो, अर्थात् जो कामनाओं से सन्तप्त न हो, विशुद्ध परोपकार के सिवा जिसका दूसरा कोई इरादा न हो, जो अहेतुक दयासिन्धु हो और जो नाम यश के लिए अथवा किसी स्वार्थ–सिद्धि के लिए धर्मोपदेश न करता हो। जो ब्रह्म को भली भाँति जान चुका है, अर्थात् जिसने ब्रह्म–साक्षात्कार कर लिया है, जिसके लिए ईश्वर 'करतलामलकवत्' है – श्रुति का कहना है कि वही गुरु होने योग्य है। जब यह आध्यात्मिक संयोग स्थापित हो जाता है तब ईश्वर का साक्षात्कार होता है तब ईश्वर–दृष्टि सुलभ होती है।

गुरु से दीक्षा लेने के पश्चात् सत्यान्वेषी साधक के लिए आवश्यकता पड़ती है अभ्यास की। गुरूपदिष्ट साधना के सहारे इष्ट के निरन्तर ध्यान द्वारा सत्य को कार्यरूप में परिणित करने के सच्चे और बारबार प्रयास को अभ्यास कहते हैं। मनुष्य ईश्वर–प्राप्ति के लिए चाहे कितना ही व्याकुल क्यों न हो, चाहे कितना ही अच्छा गुरु क्यों न मिले, साधना–अभ्यास बिना किये उसे कभी ईश्वरोपलब्धि न होगी। जिस समय अभ्यास दृढ़ हो जायेगा, उसी समय ईश्वर प्रत्यक्ष होगा।

इसीलिए कहता हूँ कि हे हिन्दुओ, हे आर्य सन्तानो, तुम लोग हमारे धर्म के हिन्दुओं के इस महान् आदर्श को कभी न भूलो। हिन्दुओं का प्रधान लक्ष्य इस भवसागर के पार जाना है – केवल इसी संसार को छोड़ना होगा ऐसा नहीं है, अपितु स्वर्ग को भी छोड़ना पड़ेगा – अशुभ को ही छोड़ने से काम न चलेगा, शुभ का भी त्याग आवश्यक है, और इसी प्रकार सृष्टि–संसार, बुरा–भला इन सबके अतीत होना होगा और अन्ततोगत्वा सच्चिदानन्द ब्रह्म का साक्षात्कार करना होगा।

योग करने एवं होने में अन्तर

प्रो. आचार्य चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

योगाधीश्वर परात्पर परब्रह्म श्रीकृष्ण अपने प्रिय सखा, शिष्य, सुहृद तथा निजजन को केवल योगी हो जाने की सलाह देते हैं। योगयुक्त होकर सभी संसारी और पारलौकिक कर्म करने से सुख दुःख, जन्म मरण एवं माया का बन्धन सदा-सदा के लिए छूट जाता है। प्रलय के बाद उनकी फिर भवचक्र में आवृत्ति अर्थात् आवागमन और नाना प्रकार के दुःख भोगने का सिलसिला या उसकी श्रृंखला नहीं बना करती। जीव के साथ अनादिकाल से कर्तापने और भोक्तापने की जो बीमारी लगी हुई है, वह शास्त्रज्ञान से, यज्ञयागादि से, पूजापाठ या जाप के द्वारा दूर नहीं होती। उसको दूर करने का एकमात्र उपाय योग और केवल योग है। श्रीमद्भगवद् गीता में निष्कर्ष के रूप में योगेश्वर श्रीकृष्ण इसी सिद्धान्त का उद्घोष करते हैं–

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

(गीता 6/46)

तथा

वेदेषु यज्ञेषु तप:सु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाद्यम्।।

(गीता 8/28)

अर्थात् आत्मारामी योगी का दर्जा तपस्वी, ज्ञानी, कर्मकाण्डी से बहुत ऊँचा है। वेदपाठ, यज्ञयागादिक, तप तथा दान आदि पुण्यवर्द्धक शुभ कर्मों से स्वर्ग की ही प्राप्ति हो पाती है। पुण्य क्षीण हो जाने पर स्वर्ग से पुन: मर्त्यलोक में आना पड़ता है और संचित पुण्य-पाप के कर्मों को सुख-दुःख, रोग-शोक आदि के रूप में भोगना पड़ता है। जिससे नये पाप-पुण्य कर्म बनते रहते हैं। केवल योगी ही विवेकज ज्ञान से इन सभी की सीमाओं को लाँघकर उस परम अमृत पद को प्राप्त होता है, जहाँ कर्म और संस्कारों का कोई बीज ही शेष नहीं रहता।

योगयुक्त जीवन से प्रत्यक्ष और तत्काल क्या लाभ है? ऐसी जिज्ञासा प्राय: सभी के मन में हुआ करती है। योग से प्रत्यक्ष यह लाभ होता है कि तन के, मन के, चित्त के और बुद्धि के सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। जिससे जीवन में प्रसन्नता, आनन्द, उत्साह, प्रेम, दया, क्षमा, उदारता, करुणा, मैत्री भावना तथा त्यागभाव के झरने बहने लगते हैं। जीवन भय, तनाव, चिन्ता, क्रोध, लोभ, कामादि विकारों तथा असुरक्षा की भावना से पूर्णत: मुक्त होकर परमात्मा के आनन्द से लबालब भरा रहता है। इन्द्रियों का आनन्द तो प्राय: विषयों के संयोग से सभी को प्राप्त है। मन का आनन्द स्वाध्याय के बल पर कुछ को उपलब्ध होता है। चित्त का आनन्द भी साधना के बल से

प्राप्त हो जाता है किन्तु आत्मा का सहजानन्द केवल योगयुक्त भक्ति से उपलब्ध हो पाता है। जिस पुण्यात्मा ने प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जगाकर अपनी अन्तर्यात्रा करना जान लिया हो, उसका तो कहना ही क्या? ऐसे पुण्यात्माओं के विषय में योगेन्द्रों ने कहा है – '**किमत्र बहुनोक्तेन काल जयति लीलया।**' अर्थात् ऐसा योगी शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक सभी क्लेशों, रोगों और विपत्तियों से मुक्त होकर खेल-खेल में काल को भी जीत लेता है। सद्गुरुकृपा और दीर्घकाल तक लगातार श्रद्धापूर्वक सुषुम्ना में प्राणवायु के निरोध का अभ्यास करने से योग समाधि का लाभ करके स्वेच्छा से देहत्याग करने वाला बन जाता है। यदि किसी सिद्ध सद्गुरु की चरणशरण मिल जाये तो साधक योग समाधि से युक्त रहने का विज्ञान जानकर कर्मबन्धन, काल की गति तथा समस्त क्लेशों से मुक्त हो जाता है। महर्षि पतंजलि ने 'ततः क्लेशकर्म निवृत्तिः' इस सूत्र में समाधि के इसी परिणाम की ओर संकेत किया है।

आयुर्वेद के आचार्य चरक ने सदा स्वस्थ रहने के लिए अन्य परिश्रमों के साथ साथ योग को आवश्यक माना है। देखिये -

मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्ध सत्त्व विधेयं विशदा च बुद्धिः।
ज्ञानं तपः तत्परता च योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि, वाणी और क्रिया सुखदायक कार्यों में प्रवृत्त रहती है तथा मन में सकारात्मक चिन्तन होता है, जिसकी बुद्धि तुच्छ विचारों में न उलझ कर तत्त्व चिन्तन से निर्मल होती रहती है, जो ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ और योगनिष्ठ बना रहता है, उस पर रोगों का आक्रमण नहीं होता। व्यक्तिगत, भौतिक, सामाजिक, आर्थिक, प्रशासनिक तथा आध्यात्मिक सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान योग से ही सम्भव है। क्योंकि सभी समस्यायें मनुष्य के कर्मों द्वारा मनुष्यों को दुःख देने के लिए बनायी जाती हैं। यदि योग द्वारा मनुष्य एक अच्छा इन्सान बन जायेगा तो वह अच्छे और समृद्ध राष्ट्र का निर्माण कर सकेगा।

अब प्रश्न उठता है कि योगी बनें तो कैसे बनें? क्या योगी बनना है या योगी होना है? दोनों में अन्तर है। बनने की दिशा अलग है और होने की अलग है। बनने में बनावटीपन, दिखावा, छल, प्रपंच, मिथ्या आडम्बर का सहारा लिया जाता है और योगी होने के लिए अभ्यास वैराग्य आदि को साधना का पाथेय बनाना अनिवार्य है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को 'योगी भव' ऐसा कहा है। अर्थात् योगी बनना नहीं योगी हो जाने का उपदेश दिया है। योगी होने के लिए पहले यह जान लेना जरूरी होगा कि योगी किसे कहते हैं; योगियों की कितनी श्रेणियाँ होती हैं? तथा वास्तविक रूप में योगी होने के क्या उपाय हैं? योगीन्द्र गोरक्षनाथ का इन सब जिज्ञासाओं के समाधान में क्या मत है? आइये इनको समझें। संसारी व्यक्तियों का मत ठकुर सोहाती का हो सकता है। पर गोरक्षनाथ जैसे सिद्धों का मत त्रिकाल सत्य होगा। उनके मतानुसार योग अग्नि का काम करता है। जैसे घड़े को आग में पकाने पर उसमें जल या दूध भरने पर ठहरता है। कच्चे घड़े में जल रखने से जल भी नष्ट हो जाता है और घड़ा भी। उसी प्रकार योगी के अन्दर ही ज्ञान, भक्ति और कर्म का विज्ञान स्थिर रह पाता है तथा शरीर व्याधि मुक्त रह सकता है। जिसका शरीर व्याधियों से आक्रांत है वह योगी कैसे होगा? वह भोगी है। श्री गोरक्षनाथ कहते हैं – **पक्वो योगाग्निना देही ह्यजडः शोक**

वर्जित:। अपक्वा योगहीनास्तु पक्वा योगेन देहिन:।। योगाग्नि जब तक प्रज्वलित नहीं है तब तक बकरी के गले में स्थित थनों की भाँति वह केवल नाम का ही योगी है। ऐसे नाम वाले योगी धोखे में ही रहते हैं। योगी सुख-दुःख, मान-अपमान तथा शीतोष्ण से प्रभावित नहीं हुआ करता। वह काम क्रोध, लोभ मोह, इन्द्रियों के विषय तथा मनोराज्य व बुद्धि के तर्क वितर्क इन सब को जीतकर इनसे ऊपर उठ जाता है। सप्तधातुमय उसका शरीर सभी प्रकार के मलों से ऐसा विशुद्ध हो जाता है कि उसके शरीर का रोम-रोम दिव्य तेज से जगमगा उठता है। उसमें असाधारण और अलौकिक शक्तियों का आविर्भाव हो जाता है। उसका चित्त आकाश से भी अधिक निर्मल हो जाता है। फिर उसमें राग-द्वेष का बीज कैसे रह सकता है? श्री गोरखनाथ का कथन है कि -

यथाकाशस्तथा देह आकाशादपि निर्मल:।

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरो देह: स्थूलात्स्थूलो जडाज्जड:।।

योगी में इतनी सामर्थ्य होती है कि वह अणिमा, महिमा, गरिमा आदि सिद्धियों से बिना चाहे भी युक्त हो जाता है। उसके अन्दर सूक्ष्म से सूक्ष्म, स्थूल से स्थूल, भारी से भारी होने की सामर्थ्य योगबल से स्वाभाविक रूप में आ जाती है। जो योगी होते हैं, उनका तो कहना ही क्या?

इच्छारूपो हि योगीन्द्र: स्वतंत्रस्त्व जरामर:।

क्रीडति त्रिषु लोकेषु लीलया यत्र कुत्रचित्।।

अचिन्त्य शक्तिमान् योगी नाना रूपाणि धारयेत्।

संहरेच्च पुनस्तानि स्वेच्छया विजितेन्द्रिय:।।

नासौ मरणमाप्नोति पुनर्योग बलेन तत्।

पुरैव मृत एवासौ मृतस्य मरणं कुत:।।

कर्त्तव्यं नैव तस्यास्ति कृतेनासौ न लिप्यते।

जीवन्मुक्त: सदा स्वस्थ: सर्वदोष विवर्जित:।।

सच्चा योगी संकल्प सिद्ध होता है। वह तीनों लोकों में निर्बाधरूप से अपनी मौज में विचरण करता रहता है। कभी किसी रूप में कभी किसी रूप में। वह जैसा चाहता है प्रकृति के परमाणुओं का संघात बना नया-नया कलेवर बनाता रहता है। वह अपने प्रारब्ध, संचित और क्रियमाण सभी प्रकार के कर्मों के जाल को पूर्णतया उच्छिन्न कर चुका है, अतः उस पर कर्म विपाक का नियम लागू नहीं होता। वह पूर्णतः स्वतन्त्र, अजर, अमर और सदा अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित रहते हुए जीवन्मुक्त एवं सभी दोषों से रहित निर्दोष होता है।

वास्तविक योगी के लक्षण बतलाते हुए योगीन्द्र गोरखनाथ कहते हैं-

गुरु प्रसादान्मरुदेव साधितस्तेनैव चित्तं पवनेन साधितम्।

स एव योगी स जितेन्द्रिय: सुखी मूढा न जानन्ति कुतर्कवादिन:।।

चित्त हि नष्टं यदि मारुते स्यात् तत्र प्रतीतो मरुतोऽपि नाशः।
न चेदिदं स्यान्न तु तस्य शास्त्रं नात्मप्रतीतिर्न गुरुर्न मोक्षः।।

अर्थात् जिसने सिद्ध गुरुदेव की कृपा प्राप्त कर अपने प्राण, मन और चित्त को ब्रह्मनाड़ी में एकत्र कर लिया है, वही वास्तविक योगी है, जितेन्द्रिय है तथा बन्धनमुक्त होकर केवली कुम्भक में आनन्दलीन रहने वाला है। जिसका ऐसा नहीं है उसका शास्त्र ज्ञान, ध्यानानुभूति और मोक्ष की बातें मिथ्यालाप है। उसे मूढ़ ही समझना चाहिये।

उपर्युक्त विवेचन से इतना स्पष्ट हो जाता है कि सिद्धयोग कोई हलुआ-पूड़ी नहीं है। यह सिद्ध विद्या है। इसका एक आन्तरिक विज्ञान है। नियम और साधना की एक निश्चित प्रणाली है, जिस पर चलकर ही सफलता प्राप्त की जा सकती है। केवल दीक्षा लेने से बात बनने वाली नहीं। इस योग का न हर एक गुरु हो सकता है और न शिष्य ही। योगाचार्यों ने उसकी पहचान इस प्रकार बतलाई है–

दृष्टिः स्थिरा यस्य विनैव दृश्यात् चित्तं स्थिरं यस्य विना चलम्बात्।
प्राणः स्थिरो यस्य विनावरोधात् स एव योगी स गुरुः स सेव्यः।।

अर्थात् जिसकी दृष्टि बिना दृश्य के स्थिर रहे, चित्त बिना अवलम्बन के स्थिर रहे और प्राण बिना रोके ही केवली कुम्भक की स्थिति में रुके रहें, वही वास्तविक योगी है, वही गुरु है और उसी की सेवा से कृपा होगी।

अब प्रश्न उठता है कि योगी होना चाहे तो कैसे हो? इस प्रश्न का उत्तर योगेश्वर श्रीकृष्ण ने गीता में यत्र-तत्र-सर्वत्र दिया है। विशेष रूप से छठा अध्याय द्रष्टव्य है। उसमें साधक अवस्था के युंजान और सिद्ध अवस्था के युक्त योगियों के लक्षण तथा साधना पद्धतियों का संकेत किया गया है। श्रीमद्भागवत में भी सर्वत्र इसके संकेत मिलते हैं। उन संकेतों को वही समझ सकता है जो जिज्ञासु और स्वाध्यायशील है। अज्ञानी और कामनाओं में फँसा व्यक्ति इस दिव्य ज्ञान को नहीं समझ सकता। साधक को अपनी विकारी बुद्धि, चित्त, मन, इन्द्रियों और शरीर के मल को साफ करने के लिए उपाय तो करने ही पड़ेंगे। वस्त्र जितना साफ होगा रंग उतना ही गहरा चढ़ेगा। यदि जीवन में शुद्धता और पवित्रता नहीं है तो सारे साधन गज स्नान की तरह हो जायेंगे।

सर्वप्रथम एकान्त में पवित्र स्थान पर बैठकर कुशाओं, व्याघ्रचर्म, मृगचर्म अथवा श्वेत ऊन के आसन पर गर्दन, वक्षस्थल और रीढ़ की हड्डी सीधी रखकर पद्मासन, वज्रासन, सुखासन, स्वस्तिकासन या सिद्धासन में शनैः शनैः बैठने का ऐसा अभ्यास करे कि तीन घण्टे तक मूर्ति की भाँति निश्चल बैठना सम्भव हो जाये। आसन सिद्ध होने पर मन को और प्राणों को स्थिर करके दृष्टि को स्थिर करे। यह कार्य किसी समर्थ गुरु की बताई हुई प्रविधियों से सरलता से हो सकेगा अन्यथा व्यर्थ की उठापटक चलती रहेगी। इतना कर सकने पर आत्मशुद्धि के लिए धारणा, ध्यान तथा मुद्राओं की शिक्षा की आवश्यकता है। आत्मशुद्धि तक पहुँचा साधक युंजान योगी होगा। समाधि की भूमिकाओं से आगे-आगे बढ़ते जाने पर योगियों की युक्त, युक्ततर और युक्ततम श्रेणियाँ आयेंगी। युक्तावस्था के योगी की क्या है योग्यता, देखिये –

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय:।
युक्त उच्यते योगी समलोष्टाश्म कांचन:॥

(गीता 6/8)

अर्थात्, जिसको शास्त्रों की गहरी जानकारी हो और स्वयं भी अपने जीवन में उस ज्ञान का साक्षात्कार किया हो। अनुभवजनित ज्ञान को विज्ञान कहते हैं, जो उस ज्ञान से विपरीत परिस्थितियों में भी अलग न हो सके उसे कूटस्थ कहा गया है। बड़े से बड़ा दु:ख आने पर भी जिसकी देहबुद्धि और अनात्म दृष्टि नहीं होती। योगी को आत्मदृष्टि या तत्वदृष्टि से देखता है। मिट्टी का ढेला, पत्थर का टुकड़े और सुवर्ण का पिण्ड जिसको एक समान दिखाई देते हैं, उसकी इस अवस्था को योगारूढ़ समदर्शी युक्तावस्था कहा जाता है।

सच्चा योगी तो वही है जो अपने योगक्षेम की भी आशा त्याग कर अकेले ही एकान्त स्थान में शरीर, मन और वाणी का संयम करके चित्त को सदा आत्मा में लगाकर रखता है। योगवेत्ता ऋषियों ने योगी होने का उपाय इस प्रकार बताया है –

योगस्य प्रथमं द्वारं वाङ्निरोधोऽपरिग्रह:।
निराशा च निरीहा च नित्यमेकान्त शीलता॥

एकान्त में मौन रहकर अल्पाहार और अल्प निद्रा का पालन करते हुए अपरिग्रही बनकर प्राणायाम और इन्द्रिय संयम की साधना करता रहे। निरन्तर अभ्यास करते-करते ध्यान और समाधि में प्रवेश हो जायेगा, वहीं सिद्धों की कृपा से ग्रन्थि भेद होगा।

अविश्वास ठीक नहीं

आपके पास जो कुछ भी हो, वह बिना किसी हिचकिचाहट के दे डालिये। भोगने के लिए दु:ख के सिवाय और कुछ नहीं होगा। अन्यथा प्रकृति आप से जबरदस्ती छीन लेगी। प्रतिदान की आकांक्षा मत रखिये अन्यथा आनन्द से वंचित हो जाओगे। प्रतिदान की वासना से प्रकृति के प्रति अविश्वास ही तो प्रतीत होता है। अविश्वास नि:संदेह व्याकुलता और अधैर्य का जन्मदाता है।

भक्तियोग की श्रेष्ठता

डॉ. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

भगवान श्री कृष्ण ने भक्तियोग को सर्वश्रेष्ठता की उपाधि दी है कि –

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्त: उपासते।
श्रद्धया परयोपेत: ते मे युक्ततम: मत:।।
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि सन्यस्य मत्पर:।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त: उपासते।।
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि न चिरात् पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्।।

अर्थात जो मेरे भक्त अपने मन को मेरे अर्पण करके नित्य तथा निरन्तर मेरी उपासना में लगे रहते हैं और उनका हृदय अपार श्रद्धा वाली प्रेमभक्ति से भरा होता है, ऐसे मेरे भक्त मेरी दृष्टि में सर्वोत्तम हैं। उसका कारण यह है कि जबकि मेरा न किसी से द्वेष है और न प्रेम, मैं तो निरासक्त होकर उदासीनभाव से सृष्टि के कर्ता, भर्ता तथा संहर्ता के रूप में कार्य करता हूँ, फिर भी जो मेरे भक्त हैं, वह सदैव मेरे सगुणस्वरूप के हृदय में वास करते हैं और मैं उनके हृदय में वास करता हूँ। अत: मुझको ही अपना परम लक्ष्य मानने वाले अपने समस्त कर्मों को मेरे अर्पण करके अनन्यभाव से नित्य–निरन्तर मेरे ही ध्यान में मग्न रहते हैं, ऐसे भक्तों के लिए मैं बहुत शीघ्र नाव बनकर उनको इस माया के भवसागर से पार करा देता हूँ। एक और महत्वपूर्ण बात है भक्तों के लिए, वह है कि

अपि चेद दुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स: मन्तव्य सम्यक् व्यवस्थो हि स:।।
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वत् शान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतीजाहि न मे भक्त: प्रणश्यति।।
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्य: मोक्षयिस्यामि मा शुच:।।

यदि कोई जीवात्मा पूर्व में दुराचारी रहा हो किन्तु वर्तमान में अनन्यभाव से परमात्मा की उपासना में लगा हुआ है, तब उसे तुम सच्चा महात्मा ही समझो जोकि अपने भक्ति धर्म को ठीक से निभा रहा है। ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही सद्‌गुणसम्पन्न महात्मा ही बन जाता है और परम शान्ति को प्राप्त कर लेता है। हे अर्जुन! मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्त की कभी भी दुर्गति नहीं होती। अत: तुम अन्य सभी धर्मों को त्यागकर मेरी भक्ति में अपने को मेरे समर्पण कर देते हो तो निश्चित ही मैं तुम्हें तुम्हारे समस्त पापों से मुक्त कर दूंगा।

भक्तियोग में एक और महत्वपूर्ण बात है कि इस संसार में प्रत्येक घटना परमात्मा के शासन में कर्मफल के विधान के अनुसार घटती है। यद्यपि परमात्मा सर्वान्तर्यामी तथा सबको जीवन तथा शक्ति दाता है। जिस तरह विद्युत–मशीनें विद्युत की शक्ति के बिना कोई भी कार्य नहीं कर सकती उसी तरह कोई भी प्राणी परमात्मा की शक्ति के बिना कुछ नहीं कर सकता।

फिर भी परमात्मा के विषय में गीता में एक रहस्य छिपा है और वह है कि–

सर्वभूतेषु समोऽहं न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

अर्थात् यद्यपि परमात्मा का समस्त प्राणियों के प्रति न द्वेष है और न प्यार, फिर भी जो भक्तिपूर्वक उसकी उपासना करते हैं, तो परमात्मा प्रेमभाव के रूप में उनके हृदय में वास करते हैं और वह प्राणी अपने श्रद्धाभाव के रूप में परमात्मा के हृदय में रहता है। उपनिषद इस सत्य की पुष्टि करते हैं कि

ये यथा यथा उपासते स तदेव भवति

अर्थात् जीवात्मा जिस–जिस भाव में और जिस–जिस रूप में परमात्मा को भजता है, परमात्मा उसी रूप में प्रकट होकर उसी भाव को पुष्ट करता है, क्योंकि वह ही भाव तथा रूप का जन्मदाता है और प्रत्येक जीवात्मा के चित्त में चित्तवृत्ति के रूप में प्रकाशित हो रहा है। ठीक उसी प्रकार जिस तरह कि सिनेमा के परदे पर सम्पूर्ण चलचित्र के दृश्य प्रकाशकिरणों के माध्यम से प्रकाशित होते हैं। भगवान श्री कृष्ण स्वयं स्वीकार करते हैं कि

पुरुषः सः परः पार्थ भक्त्या लभ्यः तु अनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्।।

अर्थात् परम पुरुष परमात्मा को भक्तियोग के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि सभी जीव परमात्मा के सर्वव्यापक शरीर में ही वास करते हैं। भक्तियोग की साधना करने वाले भक्त हर समय अपने आराध्यदेव परमात्मा के प्रेम में पागल रहते हैं और दिन–रात उसी की अर्चना तथा सेवा में व्यस्त रहते हैं। उनके पास अपनी सुरक्षा या अपनी आवश्यकताओं के विषय में सोचने का समय ही नहीं होता। अतः उनकी सुरक्षा तथा आवश्यकताओं की पूर्ति की जिम्मेदारी स्वयं परमात्मा निभाता है। इतना ही नहीं अपितु मनुष्य जीवन का जो परम लक्ष्य यानि परमात्मा के स्वरूप की प्राप्ति का भी सुगम मार्ग प्रशस्त करने का दायित्व भी परमात्मा का है। इस दायित्व की पुष्टि स्वयं परमात्मा ने श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से की है कि

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।
मच्चित्ताः मद्गतप्राणाः बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च।।
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।।
तेषामेवानुकम्पार्थं अहमज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता।।

अर्थात् जो भक्त अनन्यभक्ति के द्वारा मेरी उपासना करते हैं ऐसे अव्यभिचारिणी भक्ति में निशिदिन संलग्न भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं निभाता हूँ। जिनका चित्त मेरे विशुद्ध [illegible] से रंजित है, जिनके प्राण मेरे स्वरूप में रहते हैं यानि जिन्होंने अपना जीवन ही मेरे अर्पण कर दिया है, जो निरन्तर मेरा मनन करते हैं, मेरे चिन्तन में डूबे रहते हैं, नित्य निशिदिन प्रेम में विभोर होकर मेरा गायन करते हैं, मेरे स्वरूप में एकाग्र होकर, अपनी स्वरूप-शून्यता में सदैव मेरे ध्यान में समाहित रहते हैं, मेरे आनन्दस्वरूप में रमण करते हैं। इस प्रकार अपार निष्काम प्रेम में डूबकर मेरा भजन तथा उपासना करते रहते हैं, ऐसे भक्तों को मैं उनके परमकल्याण के निमित्त बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिसके द्वारा उनका मन तथा बुद्धि मेरे सच्चिदानन्द स्वरूप में प्रवेश करने में समर्थ होता है जिसका परिणाम यह होता है कि उनके हृदय में ज्ञानदीप्ति का प्रकाश फैलने लगता, उनका जीवात्मभाव मेरे परमात्मभाव में एकरस तथा एकात्मता का अनुभव करता है। ऐसे भक्तों का मायाजनित अविद्या का अंधकार नष्ट हो जाता है तथा परमात्मा के दिव्य ज्योतिस्वरूप के दर्शन हो जाते हैं।

कुछ लोग आरती तथा पूजा-पाठ को ही भक्ति समझते हैं। इसलिए सच्ची भक्ति तथा सच्चे भक्तों के लक्षण समझना आवश्यक है। भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने मुख से अपने भक्तों के लक्षण बताये हैं कि

सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिः यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥
यस्मान्नोद्विजते लोकः लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैः मुक्तो यः स च मे प्रियः॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी भक्तिमान् यः सः मे प्रियः॥
यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान् यः सः मे प्रियः॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगवर्जितः॥
तुल्यनिन्दास्तुतिः मौनी सन्तुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिः भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

अर्थात् मुझ परमात्मा को वह भक्त प्यारा है जिसका मन तथा बुद्धि मेरे में समर्पण है। अतः इन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में रसास्वादन के लिए आकर्षित नहीं होतीं, मन में विषय-भोगों के प्रति वासना समाप्त हो गयी है, बुद्धि बाह्य विषय-भोगों का न चिन्तन करती है और न ऐसी कोई अभिलाषा रखती है। मेरा भक्त अपने में ही सन्तुष्ट रहता है, उसकी मन-बुद्धि मेरे स्वरूप तथा लीलाओं में ही आसक्त रहती है। उसकी न तो किसी से शत्रुता है और न द्वेष और स्वार्थ का टकराव न होने से अन्य जीव भी उससे द्वेष नहीं रखते। इस प्रकार उसके मन में सुख-दुःख, भय आदि के विकार उत्पन्न ही नहीं होते, वह द्वन्द्वरहित होकर नित्य-निरन्तर परमात्मा के

भजन-पूजन में ही व्यस्त रहता है। उसको किसी भी प्राणी की सहायता की अपेक्षा नहीं है. भोगेश्वर्यों से विरक्त होने के कारण मन एकाग्रावस्था में चला जाता है जिससे कि उसका अन्तःकरण मल-विकारों से मुक्त होकर शुद्ध होता चला जाता है. रजोगुण तथा तमोगुण शान्त होने लगते है और सतोगुण का प्रभाव बढ़ने से सांसारिक कामनाओं के लिए कर्मों में प्रवृत्ति ही नहीं होती. ऐसा विरक्त भक्त मुझे बहुत प्रिय है। मेरा भक्त माया के गुण तथा उनके विकारों से मुक्त रहता है. राग-द्वेष के विकार उसके अन्तःकरण से धुल जाते है. अतः शुभ अथवा अशुभ घटनाओं से उसका मन तनिक भी विचलित नहीं होता। मेरा भक्त तृष्णाओं तथा वासनाओं से मुक्त होकर विशाल हृदय प्राप्त कर लेता है जिसमें न किसी के लिए शत्रुभाव है और न मित्रभाव है। संगदोष से रहित होकर उसका चित्त समतावस्था को प्राप्त कर लेता है जिसमें निन्दा तथा प्रशंसा दोनों समान रहते है. वह तो एकान्तवास में निशिदिन नित्य-निरन्तर परमात्मा के विशुद्ध प्रेम में रमण करता है. ऐसा भक्त मुझे अत्यन्त प्रिय है. वह तो मेरे परमानन्दस्वरूप में सदैव निमग्न रहता है।

भाव-प्रसून

श्रीमती सरिता भारद्वाज, दिल्ली

अति उत्साह उमंग से भोले, बीज योग का धरा पर लाये।
बड़े प्रेम से श्रीप्रभुजी ने, योग बीज को लगा उगाये।
बीज वपन और सम्वर्द्धन कर, श्रीगुरुवर को सौंप दियो।
अथक परिश्रम गुरु आज्ञा को, मान पौध को वृक्ष कियो।
सिद्ध वृक्ष का हर अवयव अब, योग का पाठ पढ़ाता है।
अथ 'योगानुशासनम्' से यह, 'चिति-शक्ति' बतलाता है।
आसन, मुद्रा, बन्ध, क्रियायें, ये सब इसकी डाली हैं।
कोमल पात झूम हिल कहते, पूर्ण कृपा गुरु कर डाली है।
योग वृक्ष का अचल कलेवर, अटल ध्यान बतलाता है।
जो भी मन एकाग्र करे वह, स्थिति ऐसी पा जाता है।
सिद्धयोग का यह विशाल तरु, देश-विदेशों में अद्‌भुत है।
नैतिक मूल्य छिपे हैं लाखों, जो जाने वह श्रीयुत है।
गुरु का सिद्ध वृक्ष निशिवासर, यह शिक्षा देता रहता।
जो भी इसकी शरण गहे वह, निर्भय होकर जग में रहता।

गीता में अष्टांग योग

जनक कुलश्रेष्ठ, ग्वालियर

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

(गीता 6/3)

योगी सातवलेकर ने योग में प्रवेश करने वाले व्यक्ति को सर्व प्रथम अष्टांग योग रूपी कर्म करना आवश्यक बतलाया है। योगदर्शन में दिये गये यम–नियमों का पालन करना आवश्यक है। यम का अर्थ है शासन और व्यवस्था रखना। शरीर में फैली हुई अशांति, भ्रष्टाचार, व्यभिचार आदि दोषों के निवारण के लिए तथा समाज में व्याप्त विषमता मिटाने के लिए योगी यमों की साधना करता है। यमों को सार्वभौम व्रत कहा है। 'जाति देश काल समयानवच्छिन्ना सार्वभौम महाव्रतम्।' 2/31। इन यमों का पालन किसी भी देश, काल, समय की सीमा में किये जा सकते हैं। यम पाँच प्रकार के हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह है।

अहिंसा :

अहिंसा तीन प्रकार की होती है। (1) शारीरिक (2) मानसिक (3) आध्यात्मिक। शारीरिक हिंसा में किसी प्राणी की हत्या करना अथवा अन्य प्रकार की शारीरिक पीड़ा देना है। आजकल आतंकवादी जिहाद के नाम पर किसी भी निरपराध व्यक्ति की प्राण हानि को अपना धर्म समझते हैं। जो व्यक्ति इस प्रकार की हिंसा को पुण्य समझते हैं, उनके धर्मग्रन्थों में इस प्रकार की हिंसा का आदेश नहीं दिया गया है। इस प्रकार का अंधविश्वास सारे विश्व के एक समुदाय में व्याप्त है, जिसके कारण सारा मानव समाज त्रस्त है।

मानसिक हिंसा :

किसी व्यक्ति को किसी प्रकार से मन का क्लेश पहुँचाना मानसिक हिंसा कहलाती है। एक व्यक्ति किसी अन्य को कड़वे वचन कहता है, तो उन वचनों से उस अन्य व्यक्ति को क्लेश होता है। उसके मन में उद्वेग उत्पन्न होता है, जिसके कारण उसके शरीर की शक्ति क्षीण होती है।

आध्यात्मिक हिंसा :

उपरोक्त दोनों प्रकार की हिंसा की अपेक्षा आध्यात्मिक हिंसा सबसे बड़ी हिंसा होती है। जो भोगवादी व्यक्ति होते हैं, वे अपने उदर पोषण को ही अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। न्याय और अन्याय से धन संचित करके दूसरों को तो कष्ट पहुँचाते ही हैं, अपितु उनका अपना

अन्तःकरण भी मलिन हो जाता है। इससे उनकी स्वयं की हानि अधिक होती है। उनको घोर नरकों में गिराया जाकर अनेकानेक कष्ट दिये जाते है। अथवा मरणोपरान्त दूसरा शरीर कूकर–शूकर आदि योनियों का मिलता है।

इसलिए शारीरिक बल वाले व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने समय का उपयोग निर्बलों, असहायों और पीड़ित व्यक्तियों की सहायता में करे। मानसिक शक्ति वाले मानसिक शक्ति से मानसिक हिंसा को मिटाये। योगियों और संतों में आध्यात्मिक शक्ति होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि उनके समीप रहने वाले हिंसक पशु भी हिंसा वृत्ति को त्याग देते है।
'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।' 2/35 यो द.

सत्य :

जैसा देखा हो, जैसा सुना हो, जैसा अनुमान किया हो, उसे वैसा ही वाणी से कथन करना और मन में धारण करना सत्य कहलाता है। असत्य का आश्रय लेने से समाज में द्वेष और कलह तथा अशान्ति उत्पन्न होती है। जिस समय जिसके लिए जैसा यथार्थ रूप में करना चाहिये वही सत्य अर्थात् कर्तव्य ही सत्य है। यदि प्राणी की प्राण रक्षा के लिये असत्य का आश्रय लिया जाये तो वह भी सत्य रूप कर्तव्य है। यदि किसी की सत्य कही गई वाणी से किसी प्राणी के प्राणों की हानि होती है, तो वह सत्य कथन असत्य ही है। इसलिए अच्छे प्रकार से परीक्षा करके सब प्राणियों के हितार्थ सत्य बोले। 'सत्यं ब्रूयात न ब्रूयात सत्यमप्रियम।' अर्थात् वह सत्य बोले जो प्रिय हो। उस सत्य को न बोले जो अप्रिय हो। अर्थात् सत्य को मीठा करके बोले। इससे समाज में अशान्ति, कलह व द्वेष नहीं होते।

सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ' 2/36 यो द.

अर्थात् जो कर्म किसी ने नहीं किया है, उसका भी फल उसे प्रदान करने की शक्ति उस योगी में आ जाती है। उस योगी के द्वारा दिये जाने वाला शाप या आशीर्वाद सत्य ही होता है।

अस्तेय :

स्तेय का अर्थ है चोरी करना। अन्याय, छल–कपट से दूसरे के स्वत्व के अपहरण को स्तेय कहते है। आजकल शक्तिशाली व्यक्ति, फैक्ट्री के स्वामी, धनलोलुप राजनेता आदि साधारण जनता का अन्यायपूर्वक धन हरण करके उनका शोषण कर रहे है। यही स्तेय है। इसी का परिणाम है कि सारे राष्ट्र में अशान्ति का वातावरण व्याप्त है। यदि अस्तेय का पालन किया जाये तो देश अति समृद्धिशाली हो जाये। इसी प्रकार योग के मार्ग पर चलने वाले साधक में किसी वस्तु के साथ राग है तो वह भी स्तेय कहलाता है। अपनी उन्नति चाहने वाले साधक को अस्तेय का पालन करना अति आवश्यक है।

'अस्तेय प्रतिष्ठायां सर्व रत्नोपस्थानम्' (2/37 यो द.)

अर्थात् अस्तेय का पालन करने वाले के लिए सब प्रकार के रत्न प्रगट होते है।

ब्रह्मचर्य :

ब्रह्मचर्य का पालन न करने से समाज में व्यभिचार की वृत्ति बढ़ती है और मनुष्य का जीवन पशुवत हो जाता है। आजकल पिता का अपनी पुत्री के साथ व्यभिचार करने सम्बन्धी समाचार पत्रों में आये दिन समाचार निकलते रहते हैं।

'ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठाया वीर्य लाभः' (2/38 यो.द.)

अपरिग्रह :

धन सम्पत्ति को अपनी आवश्यकता से अधिक केवल भोग के लिए ही संचित करके रखना ही अपरिग्रह है। यदि प्रत्येक व्यक्ति के पास उसकी आवश्यकतानुसार सम्पत्ति रहे तो समाज में कोई मनुष्य निर्धन, भूखा और बेघरवाला नहीं रहेगा। योगी अपने शरीर निर्वाह के निमित्त सम्पत्ति रखता है और अपरिग्रह का कड़ाई से पालन करता है।

'अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासंबोधः' (2/39 यो.द.)

अर्थात् अपरिग्रह से पूर्व जन्म का ज्ञान होता है। सर्व साधारण से सम्बन्धित यमों का वर्णन करके वैयक्तिक रूपी 'नियमों' का पालन करना, योग की साधना की सीढ़ी पर चढ़ने के लिए अतिआवश्यक है।

नियम पाँच होते हैं—शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधानि

'शौच सन्तोष तप: स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानि नियमा' (यो.द. 2/32)

यमों का पालन समाज और राष्ट्रोन्नति के लिए उपयोगी है, जबकि नियमों के पालन से साधक की आन्तरिक शुद्धि होती है। मन के मल, विक्षेप और आवरणों का अन्त होकर उसका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। जिससे साधक अपने लक्ष्य तक आसानी से पहुँच जाता है।

शौच :

शौच दो प्रकार की होती है। (1) बाह्य शुद्धि (2) आन्तरिक शुद्धि। जल, मृत्तिका से शरीर के बाह्य अंगों की शुद्धि करना बाह्य शुद्धि कहलाती है। जप, तप और शुद्ध विचारों के द्वारा मैत्री, करुणा आदि की भावना से अन्तःकरण के राग-द्वेष आदि विकारों का नाश करना आन्तरिक शुद्धि कहलाती है। शौच के पालन से साधक को अपने अपवित्र शरीर से भी वैराग्य हो जाता है।

'शौचात्स्वांग जुगुप्सा परेर संसर्ग।' (यो.द. 2/42)

संतोष :

किसी प्रकार की कामना या तृष्णा न करना संतोष कहलाता है। कर्तव्य कर्म का पालन करते हुए प्रारब्धानुसार साधक को जो प्राप्त हो जाता है, उसी में वह संतुष्ट रहता है। इससे साधक को अनन्त सुख की प्राप्ति होती है। उसकी बराबरी अन्य कोई सांसारिक सुख नहीं कर

सकता है।

संतोषादनुत्तम सुखलाभ (यो.द. 2/42)

तप :

'द्वन्द्व सहन तप'। सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, हानि–लाभ, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों में साधक का समान रहना ही 'तप' कहलाता है। जो साधक शरीर, मन, वाणी को अपने नियन्त्रण में रखकर तपस्वी जीवन व्यतीत करता है, उसको शरीर और इन्द्रियों की सिद्धि हो जाती है और अशुद्धि का नाश होता है।

'कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धि क्षयात्तपस' (यो.द. 2/43)

शरीर की शुद्धि का नाश हो जाने से योगी को कायसम्पत् की प्राप्ति होती है और अणिमादिक सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। 'ततोऽणिमादि प्रादुर्भाव' तथा उसका शरीर स्वस्थ, स्वच्छ और हल्का हो जाता है।

स्वाध्याय :

ओंकार आदि प्रणव का अर्थ की भावनायुक्त होकर जप करना स्वाध्याय कहलाता है। गुरुमन्त्र भी प्रणव कहलाता है। पवित्र धर्मग्रन्थों का पठन–पाठन करना और उनमें दिये गये उपदेशों का चिंतन करना भी स्वाध्याय है। स्व+अध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन करना भी स्वाध्याय है। साधक को प्रतिदिन सोने के पूर्व दिन में किये गये निंदनीय कर्मों पर विचार करना चाहिये और उनको त्यागते रहना चाहिये। इस प्रकार उसके अन्तःकरण की शुद्धि होती है।

स्वाध्यायदिष्टदेवता सम्प्रयोग (यो.द. 2/44) स्वाध्याय से इष्टदेवता का साक्षात्कार होता है।

ईश्वर प्रणिधानि :

ईश्वर प्रणिधानि का अर्थ है अपने परमेश्वर रूप गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण करना। साधक अपने शरीर, मन तथा इन्द्रियों को और अपने जीवन को भी ईश्वर के समर्पण कर देता है। उसमें कर्तृत्वाभिमान नहीं रहता है। उसकी जो कुछ भी क्रिया होती है वह ईश्वर की इच्छा से होती है। इसका फल समाधि सिद्धि का होता है।

उपरोक्त पाँचों नियमों से 'तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानि' को क्रियायोग कहा है। इस क्रियायोग से पंच क्लेश क्षीण होते हैं।

'समाधि भावनार्थ क्लेश तनू करणार्थश्च' (यो.द. 2/2)

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश पंच क्लेश है। ये पाँचों क्लेश ही जीव को संसार चक्र में घुमाने वाले महद् दुःखदायी हैं। इस कारण इनका नाम क्लेश रखा है। यही गीता का 'योगः कर्मसु कौशलम्' है। इस प्रकार कुशलतापूर्वक किये जाने वाले निष्काम योग से मन की चंचलता नष्ट हो जाती है। मन एकाग्र हो जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि अष्टांग योग के अन्तरंग साधन हैं। ध्यान की परिपक्व अवस्था में साधक अपने इष्टदेवता को

साक्षात्कार करता है। और साधक योगारूढ़ होने लगता है। वहाँ योगी योग की वितर्कानुगत और विचारानुगत समाधियों का अनुभव करता है। विचारानुगत समाधि के द्वितीय चरण अर्थात् निर्विचार सम्प्रज्ञात समाधि के अभ्यास से योगी की बुद्धि अत्यन्त स्वच्छ हो जाती है और उसकी बुद्धि ऋतम्भरा हो जाती है। उसकी बुद्धि में किसी प्रकार का संशय या भ्रम का लेश भी नहीं रह जाता है। उस योगी के पंचक्लेश पूर्णरूप से समाप्त हो जाते हैं। और विवेकख्याति का उदय होता है। इस विवेक ज्ञान के कारण उस योगी का पुरुष (आत्मा) और प्रकृति (बुद्धि) के संयोग का अभाव हो जाता है। योगी आत्मा और अनात्मा शरीर, इन्द्रियाँ आदि प्राकृतिक वस्तुओं के भेद को जान लेता है। अर्थात् योगी को आत्मा और प्रकृति के भेद का ज्ञान हो जाता है। इसी को विवेक ज्ञान कहते हैं। निर्विचार समाधि में विचार का सम्बन्ध तो नहीं रहता, परन्तु आनन्द का अनुभव–अहंकार का सम्बन्ध रहता है। जब आनन्दानुगत समाधि में आनन्द की प्रतीति भी लुप्त हो जाती है, तब वही अस्मितानुगत समाधि समझी जाती है। अस्मितानुगत समाधि में केवल 'अहम्' प्रत्यय रह जाता है। इस समाधि के अन्तिम चरण में चित्त की चंचलता समाप्त हो जाती है।

यत्रोपरमते चित्त निरुद्ध योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मन पश्यन्तात्मनि तुष्यति।।

(गीता 6/20)

योगी अस्मितानुगत समाधि के अन्तिम चरण में सर्वसंकल्प संन्यासी हो जाता है। वह अपने शरीर, इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि पर अपना अधिकार करके जितात्मा हो जाता है। उसका चित्त उपरामता (चंचलता रहित) को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् उसके चित्त की चंचलता समाप्त हो जाती है। परन्तु उपराम हुए चित्त को पुनः अपने पूर्व स्वरूप में लौटने का भय रहता है। योगी के सतत् अभ्यास करते रहने से वह उपराम हुआ चित्त निरुद्धावस्था को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् उसके गुणों का कोई कार्य शेष न रहने से वह चित्त अपने कारण प्रकृति में लीन हो जाता है तथा योगी अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। वह अपने आप से अपने आप में संतुष्ट हो जाता है। वह योगी 'जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः' की स्थिति में आ जाता है। वह सुख–दुःख, मान–अपमान आदि द्वन्द्वों से रहित हो जाता है।

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाचनः।।

(गीता 6/8)

उस योगी का प्रकृति पर पूर्ण अधिकार हो जाता है। प्रकृति के पाँचों भूतों में उसकी अबाध गति हो जाती है। वह परमात्मा की भाँति कूटस्थ हो जाता है। उसके लिए मिट्टी, सोना और लोहे में समदृष्टि हो जाती है। वह न एक पदार्थ से घृणा करता है और न दूसरे से स्नेह रखता है। सबमें ब्रह्म की भाँति समभाव से वर्तन करता है।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते।।

(गीता 6/9)

उसका व्यवहार मित्र, शत्रु, मध्यस्थ, उदासीन, बन्धु, साधु और पापियों के प्रति समरूप से रहता है।

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।।

(गीता 5/18)

वह योगी विद्या, विनययुक्त ब्राह्मण में और चाण्डाल तथा गाय, हाथी एवं कुत्ते में भी समरूप परमात्मा के दर्शन करता है। यही है गीता का समत्वयोग।

'सर्वभूतात्म भूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते।' वह सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है अर्थात् सम्पूर्ण प्राणियों के साथ अपनी एकता का अनुभव करता है। इसलिए किसी विशेष के साथ आसक्ति न होने से अपने निष्काम भाव से कर्तव्य का पालन करते हुए कर्मों के बन्धन में आबद्ध नहीं होता है। यही है योगी की ब्राह्मी स्थिति।

'योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते' अर्थात् युक्त योगी योगारूढ़ होने पर पूर्णरूपेण शान्त और निर्मल हो जाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि गीता में अधिकांश अष्टांग योग को अपनाया है। तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान कहकर योग दर्शन ने गीता के ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग की ही पुष्टि की है। इसलिए भगवान ने कहा है कि –

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

(गीता 6/46)

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः।।

(गीता 6/47)

सकाम तपस्वियों, ज्ञानियों और कर्मकाण्डियों में से निष्काम भाव से जो भगवान का भजन करता है, वही वास्तव में योगी है। तपस्वियों में सहिष्णुता की, शास्त्रियों में बुद्धि के ज्ञान की और कर्मियों में कर्मकाण्डी क्रियाओं की प्रधानता होने से राग-द्वेष से रहित होकर अपने कर्तव्य कर्म को निष्काम भाव से करना कठिन हो जाता है। परन्तु योगी निष्काम भाव से कार्य करता है और राग-द्वेष से रहित रहता है। साथ ही उन सम्पूर्ण योगियों में भी जो भगवान पर श्रद्धा रखता है, मैं भगवान का हूँ, भगवान मेरे हैं, इस प्रकार का भाव रखने वाला योगी मेरे मत

से युक्त योगी है। इस योगी में ईश्वर प्रणिधानि का भाव कूट-कूट कर भरा होता है।

गीता में एक युक्ततम योगी के निम्नलिखित लक्षण है –

(1) योग: कर्मसु कौशलम्

(2) समत्व योग।

(3) काम: क्रोध वियुक्तानाम्

गीता में भक्त योगी के लक्षण –

(1) मुझ में (भगवान) तल्लीन होना।

(2) श्रद्धावान होना।

(3) भजते अर्थात् समाज की निष्काम भाव से सेवा करना।

उपरोक्तानुसार युक्तयोगी और भक्त योगी के छ: लक्षण है, जो योगी उक्त छ: लक्षणों से युक्त होता है, वही सिद्धयोगी होता है।

(1) योग दर्शन में योगी के श्रद्धावान होने की पुष्टि 'श्रद्धावीर्यस्मृति समाधि प्रज्ञापूर्वक इतरेषाम्। समाधि सिद्धि के लिए वीर्य और स्मृति के स्थान पर श्रद्धा का प्रथम स्थान रखा गया है।

(2) मद्गतेनान्तरात्मना अर्थात् अन्त:करण में सदा भगवान का स्मरण और चिंतन करते रहना। इसकी पूर्ति 'ईश्वर प्रणिधानि' से होती है।

(3) भजते – भज धातु का एक अर्थ सेवा करना है अर्थात् प्राणिमात्र की सेवा करना। क्योंकि समस्त प्राणियों में परमात्मा का निवास है। यमों की साधना से इस लक्षण की पूर्ति होती है।

इस प्रकार भक्त और योगी के लक्षण अष्टांग योग में पूर्णरूपेण समाहित है। केवल अकेला भक्त परमपद को प्राप्त नहीं कर सकता है। और न केवल योगी कैवल्य पद को प्राप्त कर सकता है। इस कारण परम पद का अधिकारी वही है जो योगी भी है और भक्त भी है।

□□□

स्वयं चोट खाकर भी उन पर चोट न करें और न दूसरों से चोट करवायें। जो पापी को भी मारना नहीं चाहता, ऐसे मनुष्य का देवलोक में जाने पर देवता भी स्वागत करते हैं और उससे स्पृहा करते हैं।

–महात्मा विदुर

कठिनाइयाँ वरदान हैं !

अनन्त विहारी 'मृदुल'

सच ही कठिनाइयाँ वरदान बनकर आया करती है। उदाहरणार्थ अपने देश पर चीनी आक्रमण को ही लीजिये। चीनी आक्रमण से पहले हम किस प्रकार शान्ति का नारा बुलन्द कर रहे थे और सब ओर से (युद्ध–आतंक से) निश्चिन्त होकर निष्क्रिय से बैठे थे। किन्तु जब चीन ने आक्रमण किया तब सारा देश एक साथ सोते से जाग उठा। एक–एक नयी प्रेरणा और आत्मविश्वास लेकर हम चीनियों को मार भगाने के लिए कमर कसकर तैयार हो गये और हम लोगों की ऐसी जागरूकता देखकर चीन भी हतोत्साहित होकर एकतरफा युद्धविराम की घोषणा कर पीछे हट गया। यदि चीन ने आक्रमण नहीं किया होता तो हम केवल अपने घरेलू मामलों में ही उलझे रहते और अपनी सैन्य शक्ति को सुदृढ़ बनाने की ओर से उदासीन ही रहते। किन्तु भला हो चीन का कि जिसने सीमा अतिक्रमण करके हम लोगों की आँखें खोल दीं। आज हम अपने नेताओं के कथनानुसार सभी दुश्मनों का सामना करने के लिए बिल्कुल तैयार है। तब हमने देखा कि यह आक्रमण (कठिनाइयाँ या मुसीबतें) हम लोगों के लिए एक वरदान सिद्ध हुआ।

इसी प्रकार से कोई भी कठिनाई कभी हम पर आती है और यदि हम उसका सामना करने के लिए जी–जान से पिल पड़ते हैं तो वह काफूर हो जाती है। किन्तु कठिनाइयों के आने पर जो भाई घबरा जाते हैं, उन लोगों के लिए एक ही तरीका है, जिसे अपनाकर वे कठिनाइयों से बच सकते हैं। यदि आपकी आदत कठिनाइयों से घबराने की है तो आपको चाहिये कि आप उनसे न केवल घबराना ही छोड़ दें, बल्कि कठिनाइयों को आत्मविश्वास उत्पन्न करने का सुअवसर समझें। तब आप इस दृष्टिकोण से किसी भी कठिनाई को देखेंगे तो आप अनुभव करेंगे कि कठिनाइयाँ न केवल आपको नयी शक्ति देती हैं, नयी प्रेरणा देती हैं, आपको बलवान बनाती हैं, बल्कि वे आपके व्यक्तित्व के विकास में भी सहायक होती हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण आप उपर्युक्त उदाहरण में देख चुके हैं।

एक मनोवैज्ञानिक ने लिखा है कि जब भी आपकी सृजनात्मक शक्ति कार्य में आती है, उसमें कठिनाइयों पर विजय पाने की बात मनुष्य को जितना अकथनीय आनन्द देती है, उतना जीवन का आनन्द अन्यत्र नहीं मिलता। जिस कार्य या मनोरंजन में खतरा नहीं, कठिनाइयाँ नहीं, वह कार्य, वह मनोरंजन नीरस हो जाता है। आप चाहे घर की सफाई कर रहे हों या बगीचा लगाने की योजना बना रहे हों अथवा चित्र अंकित कर रहे हों, उसका सारा मजा इसी में है कि इन सब कार्यों को अंजाम देने में कठिनाइयाँ आती हैं और आपको उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करनी है।

बहुधा मानव सर्वदा ऐसे कार्य पसंद करता है, जिसमें कम-से-कम कठिनाई हो, जहाँ सरलता-ही-सरलता हो, जहाँ अधिक परिश्रम न करना पड़े। किंतु इस कार्य पद्धति से कोई प्रशंसनीय तथा स्पष्ट कार्य सम्पन्न नहीं हो सकता। ऐसे लोगों को एक अत्यंत सफल व्यक्ति की मेज पर लटके हुए इस लक्ष्य वाक्य – **'सबसे कठिन कार्य को सबसे पहले करो'** – को ध्यान में रखना चाहिये। उससे इसका अभिप्राय पूछा गया तो उसने बताया कि काम टालने की मुझमें बुरी आदत थी जिस काम में मेरा मन नहीं लगता था अथवा जो कार्य मुझे कठिन मालूम देता था, उसे दूसरे दिन के लिए टाल देता था। उससे मुझे अनेक तरह की कठिनाइयों में रहना पड़ता था। तब विवश होकर मैंने यह लक्ष्य मेज पर लटका दिया और उसी के अनुसार कार्य करने लगा। जिन कार्यों को कठिन और दुस्साध्य समझकर मैंने टाल दिया था, उन्हें जब मैंने दृढ़ता और तत्परता के साथ हाथ में लिया तब मुझे अनुभव हुआ कि वे बड़े ही सरल कार्य हैं। यही मेरी सफलता का रहस्य है।'

इस सम्बन्ध में स्वेट मार्डेन ने अपनी पुस्तक **'जीवन और व्यवहार'** में एक स्थान पर लिखा है – 'यदि आप में दुःखद कर्तव्यों को टालने की आदत है तो आज मन में ठान लें कि जो हो चुका सो हो चुका, भविष्य में आप हर्गिज ऐसा नहीं करेंगे। कल प्रातः यह दृढ़ संकल्प करके कार्य आरम्भ कर दें कि आप किसी कर्तव्य को कल पर नहीं टालेंगे और जो कार्य आवश्यक है, उन्हें तुरन्त सम्पन्न करेंगे, कठिनाइयों के पहाड़ का निर्भीकता से सामना करेंगे। फिर आपको यह देखकर आश्चर्य होगा कि आपके दृढ़ संकल्प, स्थिरता और लौह-स्थिरता के सामने कठिनाइयों और विपत्तियों के पहाड़ भी किस प्रकार धुआँ बनकर उड़ जाते हैं।'

किसी ने ठीक ही कहा है – कठिनाइयाँ या तो ऐसी चक्की होती है जो विश्वास, आशा और निश्चय को पीस डालती है, या फिर ऐसी सीढ़ियाँ बन जाती हैं, जिन पर पैर रखकर हम नवीन जीवन और साहसिक कार्य में सिद्धि लाभ कर सकते हैं। इन दोनों बातों में से हमारे लिए वह क्या सिद्ध होगी, यह बात बहुत कुछ हमारे लिए अपने आप पर, किसी स्थिति के सम्बन्ध में कुछ करने के हमारे निश्चय पर निर्भर करती है।

विफलता या कठिनाई के फलस्वरूप हमारे साथ बुरी से बुरी बात यह हो सकती है कि हम यह अनुभव करने लगें कि इसके लिए अपने को अब और दुखी करना व्यर्थ है। फिर भला हम निराश और दुखी क्यों हों? उक्त कथन निराशा को दूर करने में यथेष्ट सहायता देगा, किन्तु निराशारूपी विष के प्रभाव को नष्ट करने वाली असली दवा तो किसी प्रकार के काम में जुट जाना है।

जीवन में जिसे सबसे सफल व्यक्ति समझते हैं, उससे प्रश्न पूछिये। वह आपको बतायेगा कि काम करते हुए उसने कभी भी यह नहीं अनुभव किया कि 'मैं बहुत काम कर चुका हूँ।' वह तो निरन्तर काम में लगन से जुटा रहा। बाधायें आयीं। वह और भी तेजी से पग बढ़ाता हुआ निरन्तर चलता रहा। बस, एक दिन उसे स्वयं आश्चर्य हुआ कि अकस्मात् उसने अपना लक्ष्य पा लिया। किसी कवि ने ठीक कहा है कि **'सिद्धि तो है चरणदासी।'** जो आगे ही चरण

बढ़ाता चलता है. सिद्धि अर्थात सफलता उसके चरणों को पूजती है।

योग्यता या गुणों की कमी के कारण अधिक लोग असफल नहीं होते, बल्कि लगातार काम न करते रहने के कारण असफल होते हैं। जब बाधायें आती हैं तो वे बड़े सामर्थ्यवान् भी बीच में ही काम छोड़ देते और असफल हो जाते हैं।

कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो काम करने का ढंग जानते हैं। वे हर प्रकार की कठिनाइयों और बाधाओं से निकलकर अपने काम को पूर्णता तक पहुँचाकर ही दम लेते हैं। यह गुण उनकी दृढ़ता का चिन्ह है। यह उनकी रचनात्मक योग्यता का प्रतीक है। वे जिस काम को हाथ में लेते हैं, उसमें ऐसे तन–मन–धन से जुट जाते हैं कि सफलता उनके चरणों को चूमने लग जाती है।

कठिन कार्य करने की केवल एक विधि है – उसे शीघ्र कर डालिये। आपके मन पर वह अपना विषैला प्रभाव जमाने न पाये और आप उसके दाँत तोड़ दें। इससे आपको जो संतोष होगा, कठिन कार्यों को आप जिस आसानी से कर सकेंगे, वह वर्णनातीत है। कठिन कार्य को टाल देना उसके बल को द्विगुणित करना है और उसके लिए दूना परिश्रम करना है।

जिन्हें जीवन में सफलता नहीं मिल सकी है अर्थात् जो असफल रहे हैं, उनके जीवन का इतिहास उठाकर देखिये। आप देखेंगे कि उनकी विफलता का मुख्य कारण प्रायः यही रहा है कि वे अपने जीवन में कड़े और कठिन एवं नीरस काम को सदा टालते गये हैं और उसे करने से जी चुराते रहे हैं।

तो इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जो कठिन काम हमारे हाथ में आ जाये , उसे छोड़ना नहीं चाहिये। हम उससे जितना जी चुरायेंगे, वह उतना ही कठिन प्रतीत होगा। जो आदमी उसी तरह की आदत डाल लेता है, उसमें वह दृढ़ता और ताकत नहीं रह जाती कि समय पड़ने पर वह कठिन काम कर ले। यदि हम काम करना चाहते हैं तो हमें काम से जी नहीं चुराना चाहिये। बिना उस तरह काम किये तो हममें योग्यता आ नहीं सकती। जो युवक इस संकल्प से जीवन में प्रवृत्त होता है कि हम अपनी परिस्थितियों से पूर्ण लाभ उठाकर जीवन की अन्तिम सीढ़ी पर पहुँचेंगे, वह किसी भी काम से मुँह नहीं मोड़ेगा, जिससे वह ऊपर उठने की सम्भावना देखता है। पर इसके विपरीत रोज हम लोग देखते हैं कि सैकड़ों नवयुवक इसके विरुद्ध आचरण करते हैं। जानते हैं कि –

कड़वी औषधि बिन पिये, मिटे न तन की ताप।

फिर भी कड़वेपन का स्मरण करके पीछे हट जाते हैं। सबल होने, दृढ होने और शक्ति सम्पादन करने का, जिससे हमारा चारित्रिक गठन हो सकता है, एक ही प्रकार है कि हमलोग कड़वी औषधि को आँख मूँदकर पी जायें। यदि आँख मूँदकर एक घूँट पी जायेंगे तो इतनी बुरी न लगेगी।

जिसको काम करना है, जिसने काम करने का दृढ़ संकल्प कर लिया है, उसके मार्ग को कठिनाई की बाधा नहीं रोक सकती। असहयोग आन्दोलन का उदाहरण हमारे सामने है।

कितनी बाधाएं मार्ग में थीं। कितने लोग इसके विरुद्ध थे। परन्तु गाँधीजी दृढ़ थे, कटिबद्ध थे। यदि कठिनाइयों और बाधाओं से डरकर गाँधीजी ने आगे कदम न बढ़ाया होता तो क्या हमारा देश गुलामी की जंजीरों को तोड़ सकता था? कदापि नहीं।

मानसिक रूप से अपरिपक्व व्यक्ति ही जीवन के दुर्भाग्य, विपत्तियों आदि पर निरन्तर कुढ़ा करता है। प्रौढ़ व्यक्ति तो कठिनाई की प्रतीक्षा करना, उसे स्वीकार कर लेना, उसका हल निकालना और सम्भवतः हार को जीत में बदल देना, अत्यन्त साहस तथा प्रसन्नता के साथ कठिनाइयों के रहते हुए भी अपना काम करना सीख लेता है। कठिनाई के आने पर अपनी विवेक-बुद्धि द्वारा उसे परास्त करने की कोई युक्ति सोचिये। यदि आपका कोई इष्ट-मित्र या सच्चा साथी हो तो उससे राय लेकर उसके विरुद्ध जेहाद छेड़ दीजिये। किसी प्रकार उससे कम-से-कम हानि हो, यह विचारिये। सच मानिये, आप अवश्य कोई न कोई युक्ति ढूंढ निकालेंगे। जो व्यक्ति कार्य सम्पन्न करने में तेजी और सतर्कता दिखलाता है, वह अवश्य सफल होता है। कठिनाइयों की घाटी टल जाती है।

स्मरण रखिये, मनुष्य को निराश न होकर सदा अपने उद्यम और शक्ति का भरोसा करना चाहिये। कठिनाइयों को कम करने का निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये। जीवन के दीप सदा उत्साह से जगमगाते रहें। उद्योग का प्रकाश हमारे चरित्र में स्थाई हो। हृदय में अदम्य उत्साह और उत्तरोत्तर बढ़ते हुए उत्साह को लेकर ही मनुष्य अपने जीवन की विविध कठिनाइयों को पार करता है। जो मनुष्य कर्म और अपने उत्तरदायित्व में तल्लीन होकर आपापन भूल जाते हैं, वे लोग सफल होते हैं।

यदि आप देखते हैं कि आपके मार्ग की बाधाएं व कठिनाइयां भीषण हैं और आप उन्हें आसानी से पार नहीं कर सकते तो भी डरने या उदास होने का कोई कारण नहीं है। अक्सर आरम्भ में विपत्तियां अथवा कठिनाइयां दूर से ही पहाड़ मालूम होती हैं, जब वे निकट आती हैं तो रुई के फाहे सी हो जाती हैं। केवल साहस और दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते रहने भर की देर है। आप ऐसा करके तो देखिये। आपकी कठिनाइयां छूमन्तर हो जाती हैं या नहीं।

OOO

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यते सर्वकिल्विषैः।
भुंजते ते त्वघं पाप ये पचन्त्यात्मकारणात्।।

यज्ञावशेष अर्थात सब को सबका हिस्सा देकर बचे हुए अन्न को खाने वाले सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, पर जो पापी लोग केवल अपने लिए ही पकाते हैं—कमाते हैं, वे पाप खाते हैं।

कई हजार वर्ष के योगी की दृष्टि में

मेरे गुरुदेव

-: केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी :-

यह अलौकिक प्रेरणादायी प्रसंग सन् दो हजार छः श्रावण मास की है। कलकत्ता का मूल निवासी, जो आध्यात्मिक वृत्ति का है, एक करोड़पति व्यापारी तीर्थाटन करने की नीयत से घर से निकला। हिन्दुस्तान के कई तीर्थस्थलों का उसने श्रद्धा के साथ दर्शन-पूजन किया। बिहार प्रान्त के तीर्थ स्थलों का दर्शन-पूजन करने के पश्चात् उसने नेपाल राज्य में प्रवेश किया। पवित्र नेपाल राज्य में उसने पशुपतिनाथ जी के साथ ही कई तीर्थस्थलों का दर्शन लाभ लिया। उसके साथ उसकी धर्मपरायण पत्नी व दो नौकर भी थे। उसके पास विदेश के निर्मित एक बहुत ही उच्चकोटि का कैमरा था, जो एक किलोमीटर की दूरी तक का दृश्य बिल्कुल स्पष्ट अंकित कर लेता था। व्यापारी के इस विदेशी कैमरे में एक विशेष बात यह थी कि यह मौसम से बिल्कुल अप्रभावित था। कहने का तात्पर्य यह है कि आकाश में चाहे बादल छाये हों, पानी पड़ रहा हो, कोहरा हो या तेज आँधी चल रही हो, यह अपना कार्य निर्विघ्न रूप से करता ही था। इस व्यापारी ने जिन-जिन तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया, सभी का उसी कैमरे से फोटो भी लिया। साथ ही जिन तीर्थस्थलों के पास पहाड़ या जंगल थे उसने सभी दृश्य कैमरे में ले लिये।

तीर्थयात्रा के अन्तिम चरण में उस व्यापारी दम्पति ने माँ विन्ध्यवासिनी, काली खोह एवं त्रिकोण का दर्शन उत्तर प्रदेश के मीरजापुर जनपद तथा काशी के विश्वनाथ, संकटमोचन, दुर्गा मन्दिर और भगवान बुद्धदेव की तपःस्थली सारनाथ का जनपद वाराणसी में दर्शन करने का संकल्प किया था। नेपाल हिमालय के बाद ये दम्पति तीर्थयात्रा के लिए मीरजापुर जनपद आये। साथ ही मीरजापुर के सभी तीर्थ स्थलों का भ्रमण किया तथा फोटो लिए तथा रात्रि विश्राम जनपद के शहरी क्षेत्र में किया।

माँ विन्ध्यवासिनी का एक भक्त ब्राह्मण ज्योतिष विद्या का विशेष जानकार है, जिसका इस व्यापारी दम्पति का उससे कुछ वर्षों पहले परिचय हुआ था। व्यापारी दम्पति अपने पूरे लाव-लश्कर के साथ इसी पण्डित जी के यहाँ रुके। रात्रि विश्राम के अगले दिन नित्य क्रिया से निवृत्त होकर व्यापारी ने अपने कैमरे की सभी रील एक ख्यातिप्राप्त स्टूडियो में अर्जेन्ट धुलने के लिए दे दी। उन्होंने अनुरोध किया कि उन्हें ये सभी फोटो दूसरे दिन सायंकाल तक अवश्य तैयार मिलनी चाहिये। अपने सामानों की गठरी पण्डित जी के घर पर कोठरी में बन्द कर दी तथा वाराणसी जनपद में स्थित तीर्थस्थलों के दर्शन के लिए चल पड़ा। उसने सारनाथ के साथ वाराणसी के सभी तीर्थों का दर्शन एवं पूजन किया तथा सबका फोटो लिया। एक-देर रात

मीरजापुर अपने प्रवास वाले स्थान पर पहुँच गया। रात्रि निवास उसने ज्योतिषी जी के घर पर ही किया।

अगले दिन भोजन विश्राम के बाद अपराह्न करीब चार बजे वह अपने फोटो लेने उस स्टूडियो में गया जहाँ रील सफाई के लिए दी थी। सभी फोटो उसे मिल गये एवं उसने उन्हें दुकान पर ही देखना शुरू कर दिया। सभी फोटो बिल्कुल स्पष्ट और साफ आये थे। उन फोटो में एक ऐसा भी फोटो था जिसमें चारों तरफ जंगली पेड़ और घास दिखलायी दे रही थी। एवं उसी में पद्मासन में बैठने की मुद्रा में एक नर–कंकाल दिखलाई दे रहा था। बैठे हुए नरकंकाल की धरातल से ऊँचाई लगभग साढ़े चार फीट है, ऐसा प्रतीत होता था। इस नरकंकाल के शरीर का पूरा भाग अर्थात् मुखमण्डल, शिश एवं जटायें, मौछ, भुजायें, वक्षस्थल, कंधे, पैर एवं जंघा बिल्कुल–बिल्कुल स्पष्ट नजर आता था। ऐसा प्रतीत होता है जैसे कोई साधक समाधि में बैठा हुआ है। ऐसे फोटो को देखकर वह व्यापारी तथा उसने जिसको–जिसको यह स्वरूप दिखलाया सभी महान आश्चर्य में पड़ गये। बिल्कुल घनघोर बियाबान जंगल में नैतिक क्रिया करने वाले मानव का निवास करना असम्भव सा ही है। इस नरकंकाल को देखने वाले अधिकांश लोगों ने यही अनुमान लगाया कि कोई ध्यानाभ्यासी साधक रहा होगा एवं उसका इसी स्थिति में प्राण शरीर से अलहदा हो गया होगा। क्योंकि ऐसे निर्जन एवं दुरूह जंगल में जीवधारी का रहना नामुमकिन है। यह बात इस रहस्य से भी स्पष्ट हो जाती है कि इस फोटो में, जिसमें जंगली पेड़–पौधे के अलावा सिर्फ इस नरकंकाल के अतिरिक्त बाकी कोई भी पशु या पक्षी नहीं दिखाई दे रहा था। कारण यह है कि कोई भी पशु–पक्षी इस जंगल क्षेत्र में रहता तो उसका फोटो यह कैमरा अवश्य ही खींच लेता। यह स्थिति अस्पष्ट थी कि यह नरकंकाल है या किसी योगी साधक का प्राणयुक्त शरीर है। व्यापारी ने स्टूडियो वाले को पैसा दिया एवं सभी फोटो लेकर प्रवास स्थान ज्योतिषी जी के घर आ गया। उसने बड़े ही कौतूहल वश ज्योतिषी जी एवं वहाँ उपस्थित सभी लोगों को ये फोटो दिखलाये।

जिस समय ज्योतिषी जी के यहाँ उपस्थित समुदाय उपरोक्त वर्णित फोटो देख रहा था, उसी समय हमारे एक गुरुभाई भी वहाँ पहुँच गये एवं उत्सुकतावश वे भी उस फोटो को देखने लगे। हमारे ये आदरणीय गुरुभाई, जिनकी ध्यानस्थिति अनाथनाथ की करुणाकृपा से काफी उच्चस्तर की है, मीरजापुर जनपद के शहरी क्षेत्र से सटे हुए देहात के निवासी हैं तथा पेशे से अध्यापक (मास्टर) हैं, का नाम श्री मनोहर जी है। लोग इन्हें मनोहर मास्टर या मास्टर साहब के नाम से सम्बोधित करते हैं। इन्होंने इस फोटो को जब एकाग्र मन से देखा तो इन्हें आभास हुआ कि नरकंकाल सी दिखने वाली आकृति, नरकंकाल नहीं अपितु समाधिस्थ योगी का स्वरूप है। उन्होंने निवेदन करके यह स्वरूप व्यापारी से फोटो स्टेट कराने के लिए ले लिया, फोटोस्टेट कराया तथा फिर व्यापारी को उसका फोटो लौटा दिया। इनके मन में इस समाधिस्थ योगी के स्वरूप के प्रति श्रद्धा पैदा हो गयी एवं आदरणीय भाई मनोहर मास्टर जी ने उस स्वरूप को ले जाकर उसकी विधिवत फ्रेमिंग करवायी। फ्रेमिंग कराने के बाद ये उस स्वरूप को

ले जाकर अपने पूजागृह में, जहाँ हम लोगों के आराध्य योगेश्वरद्वय का स्वरूप रखा हुआ था, उसी की सीध में (कतार में) श्री गुरुदेव के स्वरूप के बायीं ओर विराजमान कर दिया। सायंकाल इनकी धर्मपरायण पत्नी ने श्री गुरुदेव भगवान एवं दादा गुरुदेव अखण्ड कोटि ब्रह्माण्डनायक परम योगयोगेश्वर महाप्रभु श्री रामलाल जी के स्वरूपों के साथ इस समाधिस्थ योगी साधक के स्वरूप का भी आरती–पूजन किया। दूसरे दिन प्रातःकाल आदरणीय भाई श्री मनोहर मास्टर जी नित्यक्रिया से निवृत्त होकर प्रातः पाँच बजे पूजागृह में उपस्थित सभी स्वरूपों का आरती पूजन कर ध्यान में बैठ गये। आज भाई जी ज्यों ही ध्यान में बैठे इन्हें बिल्कुल स्पष्ट एवं गम्भीर वाणी में यह आकाशवाणी सुनायी दी – 'ओ! साधक, तुमने जो अनर्थ कर दिया है, तुम्हें इन योगेश्वरों के स्वरूपों के समकक्ष हमें विराजमान नहीं करना चाहिये था। यदि तुम्हारे मन में हमारे प्रति श्रद्धा है और तुम हमें अपने पूजागृह में रखना ही चाहते हो, तो इन स्वरूपों के चरण कमलों के नीचे, जिससे इनके त्रयलोक वन्दित एवं योगियों के ध्येय, भव–भयहारी चरण कमलों का अलौकिक आध्यात्मिक प्रकाश हमारे शरीर में प्रवेश करता रहे, ऐसा स्थान बनाकर उस पर विराजमान करा दो, अन्यथा उसे ले जाकर गंगाजी में प्रवाहित कर दो। ऐसी आकाशवाणी को सुनकर आदरणीय भाई श्री मनोहर मास्टर जी का शरीर प्रभु श्री योगेश्वर द्वय के योगावेश में काफी समय तक डुबकी लगाता रहा, काफी देर बाद ध्यान की प्रगाढ़ता कुछ कम हुई तो इन्होंने प्रश्न किया – 'महाराज आप कौन हैं? और कब से समाधि में बैठे हैं।' इन्होंने उत्तर दिया 'मैं महाभारत काल का एक योद्धा हूँ एवं उसी समय से ध्यान में बैठा हूँ। इस समय कौन सा समय चल रहा है, इसका हमें बिल्कुल आभास नहीं है। अब भाई जी की योगेश्वरद्वय (हमारे गुरुदेव एवं दादा गुरुदेव) के प्रति अगाध श्रद्धा पैदा हो गयी थी एवं उस योगाभ्यासी समाधिष्ठ योगी के प्रति श्रद्धा समाप्ति की ओर अग्रसर थी। इसी बीच उन्हें फिर आकाशवाणी सुनाई दी, जो और किसी की नहीं उसी महाभारत काल के बैठे योगी की थी। वह यह थी कि साढ़े सात बज चुके हैं, इन योगेश्वरों का अतुलनीय एवं अलौकिक प्रकाश मेरी सहनशक्ति से बाहर है, अतः मेरे स्वरूप को पहले गंगाजी में प्रवाहित कर दो, जल्दी करो। भाईजी तत्काल ध्यान से उठ गये, अपने योगेश्वरद्वय के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया एवं महाभारत काल के उस समाधिस्थ योगी के स्वरूप को ले जाकर श्री गंगाजी में सादर प्रवाहित कर दिया।

श्रद्धादायक महान आश्चर्य होता है कि सम्पूर्ण आध्यात्मिक शक्तियों के एक मात्र स्वामी हमारे आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज हम गुरुभाई बहिनों के बीच रहकर, अपने वास्तविक स्वरूप को पूर्णतः छिपाकर ऐसी योग लीलायें कीं कि बाह्य आँखों से उन्हें कोई भी पहचान न सका। यह बात अलहदा है कि प्रभु श्री ने अपने जिस लाड़ले को चाहा, अपना वास्तविक बोध करा दिया। अब इन्हीं शब्दों के साथ प्रसंग पूर्ण होता है –

राम तुम्हीं घनश्याम तुम्हीं, प्रभु तुम्हीं हो डमरू वाले।
सिद्धगुफा सवाँई वाले प्रभु, सिद्धगुफा सवाँई वाले।।

●●●

'योगस्थः कुरु कर्माणि'

श्रीकृष्ण चन्द्र मिश्र

'आत्मनात्मानमुद्धरेत्' के दृष्टान्त से परिलक्षित निष्काम कर्मयोग मानो विषय-ज्वाल का महागम्य और गहन स्वार्थान्धकार के लिए ध्वान्तारि (सूर्य) है। इससे भक्तियोग सिद्ध होकर ज्ञानयोग भी परिपक्व होता है। निष्काम कर्मयोग की परिणति है—परमात्मतत्व की प्राप्ति। कर्म की गति अत्यन्त गहन एवं दुर्बोध है— 'गहना कर्मणो गतिः' (गीता 4/17) इस लोक में कर्म ही प्रधान है और यह सारा विश्व कर्म का ही परिणाम है। भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म-मरण का हेतु, व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के सुख-दुःख एवं उत्थान-पतन का, शान्ति-समृद्धि, दुःख-दैन्य एवं ज्ञान-अज्ञान का, हर्ष-शोक का कारण भी यह कर्म ही है। कर्म के कारण ही कोई लता-द्रुम, कोई कीट-पतंग, कोई पशु-पक्षी, कोई राजपाल, कोई रोगी, कोई वैद्य, कोई दाता और कोई भिखारी, कोई अपराधी और कोई न्यायाधीश बना है।

कर्म की इस प्रधानता को मीमांसकों ने विस्तार से विवेचित किया है। कर्म के अनेक भेद-प्रभेद हैं। कुछ कर्म नित्य, कुछ नैमित्तिक और कुछ विहित तथा कुछ प्रतिषिद्ध हैं। कुछ कर्म किसी के लिए स्वधर्म और कुछ परधर्म है। जीव कर्मों से ही बन्धन में पड़ जाता है, उसे कर्म का शुभाशुभ फल इस जीवन में या जन्मान्तर में भोगना ही पड़ता है, **'कर्मणा बध्यते जन्तुर्विद्यया च विमुच्यते'** (महाभारत, शान्तिपर्व 241/7) (साथ-ही-साथ यह भी सत्य है कि **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः'** (ईशोपनिषद् 2) अर्थात् कर्म करते हुए ही सौ वर्षों तक जीवित रहने की इच्छा करे, क्योंकि कर्म के बिना आत्मोद्धार का कोई भी उपाय नहीं है। जनक प्रभृति ज्ञानी भी कर्म द्वारा ही परमसिद्धि को प्राप्त हुए—

'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।' (गीता 3/20)

कर्मफलासक्ति में कोई न फँसे, इसलिए आवश्यक है कि कर्म सम्यक् रीति से किये जायें। इसलिए गीता में शङ्खनिर्घोष है — **'योगस्थः कुरु कर्माणि'** (गीता 2/48) योग में स्थित होकर, योग मार्ग को अपना कर कर्म करो। योगस्थ होकर कर्म करते समय आसक्ति एवं फल में संलिप्त नहीं किया जाना चाहिये। इसी प्रकार जय और पराजय को, दुःख और सुख को एक-सा समझना चाहिये। इस तरह कर्म करते-करते भेद बुद्धि नष्ट हो जाती है। पुनः धीरे-धीरे स्थितप्रज्ञता की ओर प्रगति होती चली जाती है। चित्त अधिकाधिक पवित्र होता जाता है, मन निर्मल होता जाता है, राग-द्वेष का लोप होता जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने चित्तवृत्ति के निरोध को **योग** कहा है। चित्त की प्रमाण, विपर्यय आदि वृत्तियों और संस्कारों का लय हो जाना ही निरोध है। [illegible] के कारण। कर्मों से मनुष्य के चित्त में

संस्कार बनता है। उससे पुनः अन्य कार्य करने की कामना उत्पन्न होती है, एवं संस्कार अन्य नये कार्यों का कारण बनता है। अतएव चित्तवृत्ति के निरोध के फलस्वरूप संस्कारों का क्षय हो जाने पर राग–द्वेष मिटते–मिटते मिट जाते हैं, चित्त शुद्धि आने लगती है। वास्तव में कर्म करने की सर्वोत्तम युक्ति यही है कि कर्मों से चित्तशुद्धि हो।

योगशास्त्रानुसार योग का अर्थ वह उपाय या कर्म करने की वह विधि है, जिससे आत्मा परमात्मा से जुड़ जाय, दोनों का योग हो जावे। यम, नियम, आसन, प्राणायाम से लेकर समाधि तक की सब क्रियाओं और अवस्थाओं को **अष्टांगयोग** कहा जाता है। समाधि सिद्धि होने पर साधक ब्रह्म पर मन केन्द्रित करने में सफल हो जाता है। कर्मयोग का साधक कर्म द्वारा ही ब्रह्म पर मन केन्द्रित करने में धीरे–धीरे सफल होता है, वह जगत को ब्रह्ममय देखने लगता है। उसके सब कार्य, सब कर्म मानो ब्रह्म के लिए ही होते हैं।

योगस्थ होकर, सम्यक् युक्ति से कर्म करने पर कर्म ईश्वरार्थ जैसा होने लगता है और राग–द्वेष या संस्कार अथवा चित्तवृत्ति के निरोध के कारण क्रम–क्रम से समत्व दृष्टि विकसित होती जाती है। इससे धीरे–धीरे मन निःसंग होता है, चित्त पवित्र होता है, विचारशक्ति शुद्ध होती है और ज्ञान उद्भासित होता है। देह और आत्मा की भिन्नता भी स्पष्ट हो जाती है और जीव में शिव के दर्शन होने लगते हैं। दूसरों के कल्याण के लिए कर्म करते–करते देहबुद्धि का लोप हो जाता है। ऐसा होते ही उसके सब कर्म ईश्वर के लिए होने लगते हैं। प्रवृत्तिमार्गीय दृष्टि भी इसी दिशा की ओर संकेत कर कर्मयोग का प्रतिपादन करती है:

'कर्मयोगस्तु कामिनाम्' (श्रीमद्भागवत 11/20/67)

अर्थात् – कामनाओं से युक्त मनुष्यों के लिए, प्रवृत्तिमार्गियों के लिए कर्मयोग है, क्योंकि कर्मयोग कर्म करने की ऐसी ही युक्ति को, कर्म करने के ऐसे ही विशेष नियम को, विधान को कहा जाता है, जिसमें कर्म बन्धनकारक न होकर आत्मविकासक होता है और शनैः–शनैः अपने स्वार्थ से, शरीर से दूर हटाते हुए आत्मोत्थान की ओर, सत्य ज्ञान की ओर, ब्रह्मोपलब्धि की ओर उन्मुख करता है और अन्त में ईश्वर के साथ योग करता है। कर्मयोग कामना वाले मनुष्यों के लिए है, अकामियों के लिए नहीं, उनके लिए तो ज्ञानयोग का विधान है। भावनाप्रधान मनुष्यों के लिए भी यह नहीं है, उनके लिए भक्तियोग है। इस प्रकार संसार में अधिकतर मनुष्य कर्मयोग के ही अधिकारी हैं।

कर्मयोग में **'यज्ञार्थात् कर्मणः'** (गीता 3/9) की दृष्टि ही प्रधान है, – **'यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते'** (गीता 4/23)। यों तो यज्ञ से हवन क्रियात्मक कर्म विशेष समझा जाता है लेकिन यहाँ यज्ञ से तात्पर्य है – शास्त्रविधि से की जाने वाली सम्पूर्ण विहित क्रियाओं से। नियत कर्म अर्थात् वे सारे कर्म जो जीवन में सर पर आ पड़े हैं, चाहे वे धार्मिक कर्म हों या प्रजाभोक्ता कर्म, व्यापार चाहे नौकरी या अन्य शास्त्रों का या समाज परिवार द्वारा निर्धारित कर्म हों। यज्ञ शब्द के व्यवहार से यही इंगित किया गया है कि बिना आकांक्षा, बिना श्रद्धा, ऐसी कल्याणकारी भावना से जिस साम्य भाव से ईश्वर प्रीत्यर्थ या देव प्रीत्यर्थ कर्म किया जाता है,

उसी पवित्रता, श्रद्धा, भावना, सावधानी या जागरूकता से परार्थ कर्म किया जाना चाहिये। कर्तव्य कर्मों से अपना कुछ भी स्वार्थ न रखकर परमात्मा की पूजा की दृष्टि से उन्हें करना यज्ञ है।

कर्मयोग का साधक देना ही देना जानता है, लेने की ओर उसे झुकना नहीं है। उसे स्वार्थ से सदैव मुक्त रहना है। कर्मयोगी तभी तक अपनी इन्द्रियों को बाहर विचरण करने देता है, जबतक किसी खतरे की आहट या आशंका उसे प्रतीत नहीं होती। आहट मिलते ही कूर्म की तरह वह इन्द्रियों को समेटकर अन्तर्मुखी बन जाता है। कर्मयोग का साधक स्वयं इन्द्रियों का गुलाम न होकर इन्द्रियों को अपने वश में रखता है। वह इन्द्रियों पर सदैव नियन्त्रण रखता है।

कर्मयोगी को जितेन्द्रिय तथा मनोजयी होना चाहिये, क्योंकि जो वश्यात्मा नहीं है, उसका मन इन्द्रियों पर पर्याप्त अंकुश नहीं रख सकता है। यतचित्तेन्द्रियता के बिना स्वसुख त्याग कर परार्थ या परमार्थ कार्य समुचित रीति से, संतोषप्रद ढंग से नहीं हो सकता। द्वितीयतः **'मन एव हि संसारः'** और **'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः'** – मन ही संसार है, अपने मन में जिसके विषय जैसी धारणा बना लेते हैं, वैसा ही उसके प्रति हमारा व्यवहार होता है, क्योंकि मन के दर्पण से ही हम संसार को देखते हैं। अतएव मन ही हमारे बन्धन और मोक्ष का कारण है। निर्मल मन ही शुद्ध होता है। उस निराकार, निर्विकार का अंश है और मलिन मन ही सुख–दुःख भोगने वाला जीवात्मा है। शुद्ध–बुद्ध आत्मा, जब शरीर और मन के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है, तब उसमें हम स्वयं आ फँसते हैं। कर्म करते हुए भी हम कर्म–बन्धन में नहीं पड़े, इसके लिए आत्मा को शरीर से भिन्न समझना–वास्तविक आत्मबोध होना आवश्यक है, अर्थात् मन को अपने वश में रखना है, निर्मल रखना है, कर्तव्यभोक्तृत्वाभिमान से दूर रखना है।

कर्मयोग के पथ पर चलने वाले को **'परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्'** के सिद्धान्त को सतत् स्मरण रखना है। इसलिए उसे अपना समय, अपनी शक्ति या जो कुछ भी उसे प्राप्त है, उन्हें परोपकार में ही लगाना है। कर्मयोगी को **'बहुजनहिताय बहुजनसुखाय'** ही नहीं, उसे तो इस विधि से कर्म करना है, जिससे – **'सर्वे सुखिनः सन्तु'** की सद्भावना साकार हो सके।

यहाँ निष्काम शब्द का अभिप्राय भी जान लेना उचित ही होगा। काम शब्द का अर्थ है इच्छा, चाह, कामना। सकाम का अर्थ है कामनासहित, इच्छायुक्त, चाह के साथ। सकाम कर्म से तात्पर्य है ऐसा कर्म, जो मनुष्य अपने इन्द्रिय सुख के लिए करता है। ऐसा कर्म बन्धनकारक होता है, क्योंकि ऐसे कर्मों के साथ आसक्ति जुड़ी होती है और इनमें लगी रहती है फलाशा या फलाकांक्षा भी। ऐसे कर्मों में दूसरों के हित का चिन्तन नहीं रहता। अतएव सकाम कर्म कर्मयोग की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता। कर्मयोग का सम्बन्ध ऐसे कर्मों से है जो समस्त बुद्धि से, यतचित्तेन्द्रिय हो फलाकांक्षा तथा किसी स्वार्थपूर्ण कामना से रहित होकर दूसरों के कल्याण के लिए किया जाता है। ऐसे कर्मों को कामनाहीन निष्काम होना चाहिये। परार्थ कर्म या ईश्वरार्थ

कर्म, विश्व को परमेश्वर का विराट रूप मानकर उसकी प्रसन्नता के लिए होते हैं। ऐसे '**परस्मै निवेदितम्**' कर्म को निष्काम कर्म समझा जाता है, क्योंकि ऐसे कर्म में लगी बुद्धि व्यवसायात्मिका एक ही रहती है, बहुशाखा वाली अनेकानेक नहीं।

परन्तु निष्काम कर्मयोग सिद्ध होने पर उसकी प्राप्ति होती है, जिसके बाद और किसी प्राप्ति की चाह रह ही नहीं जाती, कोई कामना शेष नहीं रह जाती है। इससे ब्रह्मोपलब्धि किंवा मोक्षप्राप्ति हो जाती है। कहा भी गया है –

'**असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।**' (गीता 3/19)

'आसक्तिहीन हो कर्मयोग का आचरण करने से मनुष्य परमात्मतत्व को प्राप्त कर लेता है।' ऐसे आत्मवान् निष्काम कर्मयोगी को कर्मबन्धन नहीं होता है। क्योंकि –

त्यक्त्वा कर्मफलासंग नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः।

(गीता 4/20)

'निष्काम कर्मयोगी सांसारिक आश्रय से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त कर्मों के फल और कर्तृत्वाभिमान को त्यागकर कर्म में अच्छी तरह बर्तता हुआ भी मानो कुछ नहीं करता है।' अतः वह कर्म करके भी नहीं बँधता है – '**कृत्वापि न निबध्यते**'।

***

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः
अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो
यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।।

–आचार्य चाणक्य

वेद शास्त्र अनन्त हैं और विद्यायें भी बहुत हैं। दूसरी ओर समय बहुत कम है और विघ्न बहुत हैं, अतः इन शास्त्रों में जो सार है, उसे ग्रहण करना चाहिये। जैसे हंस दूध और पानी के मिश्रण में से दूध को ग्रहण कर लेता है और पानी को छोड़ देता है।

जिहि घट दया तहाँ प्रभु आप

डॉ. गणेशदत्त सारस्वत

एक बोधकथा है – पूर्वजन्म का ज्ञान रखने वाले एक संत एक निर्जन स्थान में मिट्टी से खेल रहे थे। मिट्टी से घर तथा अन्य वस्तुओं का निर्माण करते फिर उसे मिटा देते और जोरों से अट्टहास करते। भाव यह था कि मिट्टी के मकान और उससे प्राप्त खनिज के पीछे व्यक्ति इतना उन्मत्त हो रहा है कि वह इस वास्तविकता को नहीं समझता कि यह सब नष्ट होने वाला है।

एक दिन राजा की सवारी उधर से निकली। संत के तेजस्वी स्वरूप को देखकर महाराजा ने पूछा –'संतजी। आप अकेले मिट्टी से क्यों खेल रहे हैं?' उत्तर मिला – 'शरीर मिट्टी से ही बना है, अन्त में मिट्टी में ही मिल जायेगा। इसीलिए मिट्टी से खेल रहा हूँ।' राजा अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने संत से कहा कि 'आप हमारे साथ रहें।' संत ने कहा – 'मेरी चार शर्तें हैं। उन्हें तुम पूर्ण कर दो तो मैं तुम्हारे साथ रहूँगा।' राजा के पूछने पर संत ने कहा कि मेरी पहली शर्त है कि मैं सोऊँ और तुम सदैव जागृत रहकर मेरी रक्षा करना, दूसरी शर्त है कि मेरी जो इच्छा होगी वह मैं भोजन करूँगा किंतु तुम्हारे लिए खाना मना है, तीसरी शर्त है कि मैं जो चाहूँ परिधान धारण करूँ, पर तुम्हें बिना वस्त्र के रहना पड़ेगा और अन्तिम शर्त है कि जहाँ–जहाँ जाऊँ तुम्हें मेरे साथ रहना होगा।

राजा ने कहा – 'मैं आपकी रक्षा और खाने–पीने तथा पहिनने का प्रबन्ध तो कर सकता हूँ, किन्तु कभी न सोऊँ, भोजन न करूँ तथा नग्न रहूँ–यह कैसे सम्भव है?' संत ने कहा – 'मैं तुम्हारे साथ नहीं जा सकता। मेरा स्वामी परमेश्वर स्वयं खाता, सोता, पहनता नहीं और एक क्षण के लिए भी अपने प्रिय भक्त का साथ नहीं छोड़ता। ऐसे प्रतिपालक को मैं कैसे त्याग दूँ? ऐसा स्वामी कहाँ मिलेगा?'

भगवान् की इस कृपालुता का वर्णन करते हुए वैदिक ऋचा (ऋक् 10/149/4) कहती है–

> गाव इव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान् वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना।
> पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः॥

अर्थात जैसे गौएं ग्राम की ओर शीघ्र ही जाती हैं, जैसे शूरवीर योद्धा अपने प्रिय अश्व पर बैठने के लिए जाता है, जैसे स्नेहपूरित मनवाली बहुत दूध देने वाली गौ 'हम्मा रव' करती हुई अपने प्रिय बछड़े के पास शीघ्रता से जाती है तथा जैसे पति अपनी प्रियतमा सुन्दरी पत्नी से मिलने के लिए शीघ्र जाता है, वैसे ही समस्त विश्व द्वारा वरण करने योग्य निरतिशय शाश्वत

आनन्दनिधि सविता भगवान् हम शरणागत भक्तों के समीप आते है।

ऐसे परमेश्वर की शरण मे हमको जाना चाहिये, जो समस्त इन्द्रियों से रहित होने पर भी समस्त इन्द्रियो के विषयों को जानने वाला है तथा सबका स्वामी, सबका शासक और सबसे बड़ा आश्रय है–

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।

(श्वेताश्वेतरोपनिषद् 3/17)

उसी में सम्पूर्ण लोक स्थित है–**'तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा'** (यजु. 31/19)। वह सब भूतों में समभाव से व्याप्त है, उसका न कोई अप्रिय है, न प्रिय है। उसे जो प्रेम से भजते है, वे उसमें तथा वह उनमें प्रत्यक्ष रूप से प्रकट है। 'गीता' (9/30) में भगवान श्रीकृष्ण कहते है कि यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भाव से मेरा भक्त होकर मुझे भजता है तो वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है–

अपि चेत्सुदुराचारी भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

किन्तु आज स्थिति सर्वथा भिन्न है। मनुष्य दुविधा तथा भोगासक्ति से ग्रस्त है। इसीलिए कर्तव्याकर्तव्य की चिन्ता मे पड़कर भगवत्प्राप्ति से विमुख होकर प्रमत्त हो रहा है। संसार में बाँध रखने वाले विषयों के लिए उसकी लालसा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। परन्तु जैसे सर्प असावधान चूहे को दबोच लेता है, वैसे ही काल उस प्रमादग्रस्त प्राणी को अपना ग्रास बना लेता है। श्रीमद्भागवत (10/51/50) का यह कथन इसी संदर्भ को वाणी प्रदान करता है–

प्रमत्तमुच्चैरितिकृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम्।
त्वमप्रमत्तः सहसाभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः।।

इस स्थिति से मुक्ति का एकमात्र उपाय है भगवद्भक्ति। जब यह अखण्ड विश्वास होगा कि **'हरि सो हितू न कोय'** हरि से बढ़कर हमारा और कोई शुभचिंतक नहीं है तो उनमें हमारी वृत्ति रमेगी। तुलसी तो इतने अधिक राममय हैं कि वे अन्य किसी की बात सोच ही नहीं सकते है। जब वे कहते है कि **'गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।'** (विनय पत्रिका 229) यदि मैं कहूँ कि मैं राम जी को छोड़कर किसी दूसरे का हूँ तो मेरी यह जीभ गल जावे – यह धारणा उनकी रामभक्ति की अनन्यता का प्रकृष्ट प्रमाण है। वास्तव में तीनों लोको में तथा तीनों कालो मे भगवान राम के जैसा सुहृद् (अहैतुक प्रेमी) दूसरा कोई नहीं। केवल राम ही ऐसे है, जो सच्चे अर्थों में 'गरीबनिवाज' है। साधु संतों के शब्द दूध के समान है। इस शब्द–दूध में ही रामरसरूपी घृत समाया हुआ है। गुरु और गोविन्द की कृपा से ही जीव उनके शब्दों का मनन,

चिन्तन तथा मन्थन कर रामरस प्राप्त कर सकता है। इस रामरस से अन्तःकरण रूपी दीपक प्रज्वलित हो उठता है, जिसके प्रकाश में निरंजन निराकार परमात्मा के परम तेजोमय स्वरूप के दिव्य दर्शन सहज ही होने लगते हैं–

मथ कर दीपक कीजिये, सब घट भया प्रकास।
दादू दीया हाथ कर, गया निरंजन पास।।

ये दर्शन ऐसे अद्भुत हैं कि 'जीधर देखूं नैन भर तीधर सिरजनहार' जिधर भी दृष्टि जाती है उधर उसी 'सिरजनहार' के दर्शन होते हैं।

इस विशिष्ट लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक है अहंकार। मैं और मेरा का भाव ही अहंकार है। अहंकार के पूर्णतः गलते ही जीवात्मा का साक्षात्कार परमात्मा से सहज ही हो जाता है और ब्रह्मानन्द की प्राप्ति हो जाती है। सारे साधन हैं इसी अहंकार को गलाने के लिए। जीव जबतक निर्मम, निष्काम तथा निरहंकार नहीं होता, तबतक भगवत्प्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। मैं कुछ नहीं हूँ–ऐसा भाव दृढ़ होते ही जीव अहंकार रहित हो जाता है। मेरा इस संसार में कुछ नहीं है–इस भाव के दृढ़ होते ही जीव निर्मम हो जाता है। हमें कुछ नहीं चाहिये–ऐसे भाव के दृढ़ होते ही जीव निष्काम हो जाता है। केवल प्रभु ही हमारे अपने हैं – ऐसा भाव दृढ़ होते ही भगवद्भक्ति मिल जाती है। इसी में जीवन की सार्थकता निहित है।

भगवत्प्राप्ति के जितने भी साधन हैं, उनमें भजन सर्वश्रेष्ठ है। महर्षि वेदव्यास के अनुसार भजन का फल अनन्त है, उसे वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। भजन मन, वचन और तन, तीनों से करना चाहिये। भगवान् का चिन्तन मन का भजन है, नाम–गुणगान वचन का भजन है तथा भगवद् भाव से की हुई जीवसेवा तन का भजन है।

भजन के महत्व को वाणी का विषय बताते हुए काकभुशुण्ड जी गरुड़जी से अपने पिछले जन्मों का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि महर्षि लोमशजी ने दिया तो शाप था–'सपदि होहि पच्छी चंडाला' –किंतु भजन के प्रताप से वह मुनि दुर्लभ वर में परिवर्तित हो गया। यह वर था राममन्त्र के रूप में। काकभुशुण्ड जी कहते हैं –

भगति पच्छ हठ करि रहेउँ दीन्हि महारिषि साप।
मुनि दुर्लभ बर पायउँ देखहु भजन प्रताप।।

(रामचरित मानस 7/114 ख)

इसलिए पलटू साहब का आग्रह है –

पलटू अटक न कीजिये, चौरासी घर फेर।
भजन आतुरी कीजिये और बात में देर।।

वे ईश्वर को सर्वसमर्थ मानते हैं। यह उनकी ही कृपा है कि निमित्त मात्र को कर्तव्य का श्रेय मिल जाता है। ऐसे ईश्वर का निरंतर ध्यान हमारा कर्तव्य होना चाहिये।

(कल्याण से साभार)

निष्काम कर्मयोग सभी के लिए संभव

मयंक लवानियाँ

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि।।
योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समोभूत्वासमत्वं योग उच्यते।।

'तेरा कर्म करने मात्र में अधिकार है, फल तेरे अधिकार में कभी नहीं; अतः तू फल की कामना न कर, पर कर्म को छोड़ने की भी इच्छा न कर। आसक्ति को त्यागकर तथा सफलता या असफलता में समभाव रखकर योग में स्थित होकर कर्मों को कर। यह समत्व या समता का भाव ही योग कहलाता है।' (गीता 2/47–4)

श्रीमद्भगवद्गीता संसार के धर्मग्रन्थों में अन्यतम है। अनेक भाषाओं में इसके असंख्य अनुवाद और टीकायें भी हो चुकी हैं। लाखों व्यक्ति प्रेम और श्रद्धा से गीता का पाठ करते हैं। पर दैनिक जीवन में इसके उपदेशों का पालन बहुत कम लोग कर पाते हैं। अधिकतर व्यक्ति समझते हैं कि भगवान का यह आदेश केवल मोक्षप्राप्ति या परलोक सुधारने के लिए है। साधारण मनुष्यों के लिए व्यावहारिक जीवन में इन उपदेशों का पालन सम्भव नहीं है। परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। युद्धभूमि में मोहग्रस्त हुए अर्जुन ने गीता का ज्ञान प्राप्त करने के बाद युद्ध भी किया। उसमें विजय पायी तथा जीवन पर्यन्त अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक पालन करते रहे। इसी प्रकार ऊपर लिखे भगवान के आदेश का पालन हम सभी के लिए सम्भव है, न केवल सम्भव है, वरन् जीवन में सुख, शान्ति एवं सफलता प्राप्त करने का अचूक मन्त्र भी है। हम यहाँ गीता के निष्काम कर्मयोग पर और दैनिक जीवन में उसकी उपयोगिता पर विचार करेंगे और देखेंगे कि किस प्रकार हर व्यक्ति इसका पालन कर लाभ उठा सकता है?

निष्काम और आसक्ति रहित कर्म का यह सिद्धान्त जीवन की इस सच्चाई पर आधारित है कि इस संसार में सुख और दुःख, सफलता और असफलता हमारे अधिकार में नहीं है। हम कितना भी चाहें, पर इच्छानुसार भोगप्राप्ति सम्भव नहीं है। मिल भी जाये तो तृप्ति नहीं हो सकती। मनोवांछित भोगों की प्राप्ति के लिए हम भ्रष्टाचार, झूठ तथा तरह–तरह के पापों का सहारा लेते हैं, पर परिणाम क्या होता है? या तो मनचाही वस्तु मिलती नहीं या मिल भी गयी तो उससे अपेक्षित सुख नहीं मिलता। चिन्ता और विषाद बढ़ते हैं, क्रोध और ईर्ष्या से हम जलने लगते हैं। विभिन्न प्रकार के तनाव जनित रोग जैसे–सिरदर्द, कब्ज, अपच तथा भूख न लगना आदि घेर लेते हैं। फिर हम कहते हैं – जीवन बेकार है, कोई भी अपना नहीं है। सब मतलबी और बेईमान हैं। संसार में सुख तो है ही नहीं। ऐसे संसार में रहकर या जीकर क्या किया जा सकता है। संसार जंजाल है, दुःख का सागर है।

अब हम क्या कर सकते हैं? क्या संसार छोड़े बिना सुख और शान्ति मिल सकती है? क्या घरबार छोड़ना ही सच्चा सन्यास है? या फिर कोई और भी रास्ता है?–हाँ, है, और वह है निष्काम

कर्मयोग का। गीता में भगवान ने स्पष्ट कहा है कि कर्मों का स्वरूप से त्याग करना आवश्यक नहीं है, बल्कि कर्म करना ही आवश्यक है– '**मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि**' तथा कर्म न करने से हमारे शरीर का भी निर्वाह न होगा – '**शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः**'। इसलिये संसार में रहकर अपने कर्तव्य–कर्मों का पालन आवश्यक है। परन्तु (मा कर्मफलहेतुर्भू –) फल प्राप्ति में आसक्ति न हो, क्योंकि फल प्राप्ति इच्छानुसार ही हो – यह सम्भव नहीं है। मनोवांछित फल–प्राप्ति का आग्रह करके हम स्वयं को कोसने के लिये कुछ नहीं कर पायेंगे। जीवन में सुख–दुःख तो आते ही रहेंगे, उन्हें सहना ही पड़ेगा। पर यदि इनको शान्तिपूर्वक समभाव से प्रभु का विधान समझकर स्वीकार करेंगे तो हमारा अपना ही लाभ होगा।

इस प्रकार भगवान की आज्ञानुसार कर्तव्य–कर्मों का पालन एवं प्रत्येक परिस्थिति में सन्तोष रखना ही सच्चा रास्ता है। पर एक प्रश्न यह उठता है कि क्या बिना आसक्ति और कामना के सांसारिक कार्य ठीक प्रकार से हो सकते हैं? हाँ, थोड़ा विचार करने से स्पष्ट हो जायेगा कि फलप्राप्ति में अत्यधिक आसक्ति तथा ध्यान होने से सफलता की सम्भावना और घट जाती है। हाथ में आये कार्य को हम ठीक प्रकार से करते नहीं, बल्कि किसी भी तरह से धन, भोग तथा मान की प्राप्ति में ध्यान लगा देते हैं। कार्य में भूलें अधिक होती हैं, भ्रष्ट और अनुचित साधन अपनाये जाते हैं। परिणामस्वरूप मन की सुख–शान्ति नष्ट हो जाती है। रात को नींद नहीं आती तथा चिन्ता, ईर्ष्या और क्रोध की आग में हम स्वयं जलते रहते हैं। इसके विपरीत यदि हमारा ध्यान फल प्राप्ति पर न होकर कर्तव्यपालन पर होगा तो कार्य–कुशलता बढ़ेगी, बेईमानी का प्रश्न भी नहीं उठेगा, मन को शान्ति मिलेगी, और विश्वास कीजिये, सफलता की सम्भावना भी अधिक ही होगी। वैसे, मनोवांछित फल की प्राप्ति का आग्रह तो सदा पूरा नहीं होता है।

दूसरा प्रश्न यह किया जाता है कि फल की इच्छा न होने पर हमें कर्म करने की आवश्यकता ही क्या है? और इस प्रकार हम कर्मों को छोड़कर आलसी बन जायेंगे। पर यह प्रश्न निरर्थक है। कर्म करना मनुष्य का स्वभाव है, अपने स्वभाववश कर्म तो हम करेंगे ही। हमारे शरीर और जीवन–निर्वाह सम्बन्धी कर्म तो स्वतः होते ही रहेंगे, पर आसक्ति न होने पर उनके लिये चिन्ता एवं दुःख न होगा। बाकी दूसरे सांसारिक कार्य व कर्तव्य कर्मों का पालन भी हमें अपनी परिस्थिति, स्वभाव, आन्तरिक प्रेरणा या भगवान के आदेशानुसार करना होगा। भली भाँति किये हुए कर्तव्य पालन का आनन्द भोग आदि के आनन्द से कहीं अधिक होता है और, यदि इन्हीं कार्यों को हम प्रभु की सेवा समझ कर करें तो फिर कहना ही क्या!

एक और महत्त्वपूर्ण आपत्ति है कि क्या इच्छा या आसक्ति को छोड़ना सबके लिये सम्भव है या भगवान के उपदेश केवल कुछ बड़े–बड़े महात्माओं और सन्तों के लिये हैं? सच है, केवल पुस्तक पढ़ने या सुनने से तो इच्छा या आसक्ति का त्याग सम्भव नहीं, केवल अपने बल–बूते पर भी हम इस कर्मयोगी राह पर प्रगति नहीं कर सकेंगे। पग–पग पर राग–द्वेष, लोभ और ईर्ष्या हमारा रास्ता रोकेंगे, पर इस पथ पर हमारी सहायता स्वयं भगवान करेंगे। आवश्यकता है शरणागति एवं सच्चे हृदय से प्रार्थना करने की।

हमें निरन्तर प्रभु से श्रद्धा, विश्वास एवं धैर्य के लिये प्रार्थना करनी होगी, परन्तु बात तो यह है कि हम प्रार्थना भी करते हैं तो केवल सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिये ही। ठीक है, यदि हम कामना या

आसक्ति को छोड़ नहीं पाते तो सच्चे हृदय से इन्हें भगवान के सामने रख दें। यह आग्रह न हो कि भगवान हमारी अमुक इच्छा जरूर पूरी करें और अमुक प्रकार से करें। यह तो मानो प्रभु को आदेश देना होगा, न कि प्रार्थना। हमारा यह आग्रह क्यों कर पूरा होगा? हमें तो अपनी इच्छा, कामना या संकल्प को पूर्णरूप से प्रभु पर छोड़कर अपनी शक्तिभर कर्तव्य-पालन की चेष्टा करनी चाहिये। अपनी जिस मन कामना को लेकर हम प्रभु की शरण में जायें, फिर उसकी पूर्ति के लिये किसी प्रकार के अन्याय, अनाचार या गलत रास्ते को न अपनायें। जब हम अपनी मन कामना उस मंगलमय, सर्वसमर्थ परमात्मा के आगे रख देंगे तो वे स्वयं उसे पूरा करेंगे। यदि हमारी किसी मन कामना को पूरा करना उनके विधान में नहीं है या भगवान उसे पूरा नहीं करते तो फिर हम कितना भी सिर पटकें, वह पूरी होने वाली नहीं। अतः पूर्णरूप से भगवान की शरण में जाने में ही हमारा कल्याण है। प्रभु सर्वसमर्थ हैं, परम कृपालु हैं। या तो वे हमारी इच्छा को पूर्ण कर देंगे या फिर वह कामना ही मिट जायेगी। पर हर प्रकार से हम अनासक्ति एवं समभाव की ओर बढ़ते जायेंगे, यह निश्चित है। गीता कहती है-

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते।। (2/59)

केवल विषयों के त्याग से आसक्ति से निवृत्ति नहीं हो सकती। पर स्थितप्रज्ञ पुरुष की आसक्ति भी परमात्मा का साक्षात्कार करके निवृत्त हो जाती है। भाव यह है कि राग-द्वेष या आसक्ति का त्याग परमात्मा की शरण में जाने पर ही सम्भव है, न कि केवल दृढ़तापूर्वक संयम करने मात्र से।

अन्तिम बात यह है कि निष्काम कर्मयोग का मर्म पूर्णतया पालन विरले लोग ही कर पाते हैं। इसके लिये जन्म-जन्म की साधना की आवश्यकता होती है, पर हमें इससे घबराना नहीं है। ऐसा नहीं है कि हम यदि पूर्णता तक न पहुँचे तो हमारी मेहनत बेकार होगी। नहीं, यदि हम आसक्ति एवं कामनाओं का त्याग न भी कर पायें, पर उनको अपने वश में रखें और थोड़ा सा भी उन पर काबू पा सकें तो हमें बहुत लाभ होगा, वह भी परलोक में नहीं, यहीं, इसी जन्म में और निश्चय ही। हमारे जीवन में सुख और शान्ति का प्रवेश होगा। चिन्ताजनित अनेक रोगों से मुक्ति मिलेगी और धीरे-धीरे निष्काम कर्मयोग की राह में हम आगे बढ़ते जायेंगे। आवश्यकता है भगवान में विश्वास की तथा अपने को भगवान की शरण में छोड़कर कर्तव्य कर्मों का पालन करने की। यदि हम फल की इच्छा छोड़ नहीं सकते तो भी कोई बात नहीं। फल की पूर्ति प्रभु के हाथों में छोड़कर अपना काम सच्चाईपूर्वक, लगन से व एकनिष्ठ होकर करने में हम एक ऐसे आनन्द का अनुभव करेंगे, जो भोगों की प्राप्ति में नहीं मिल सकता। एक बार शुरू करने पर जैसे-जैसे अभ्यास करेंगे वैसे-वैसे आगे ही और बढ़ते जायेंगे। गीता (2/40) का साक्ष्य है-

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।।

इस निष्काम कर्मयोग का थोड़ा भी साधन महान् भय से उद्धार कर देता है। इसमें आरम्भ का नाश नहीं है और न कोई विघ्न बाधा ही होती है। इस प्रकार यह निष्काम कर्मयोग सभी के लिये सम्भव है और सभी के लिये त्वरित लाभप्रद है। इसका थोड़ा-सा पालन भी हमें बहुत कुछ सुख और शान्ति प्रदान कर सकता है।

□□□

अष्टावक्र गीता

डॉ. विजय सिंह

गीता शब्द से सामान्यतः श्रीमद्‌भगवत गीता का ही स्मरण होता है। महाभारत युद्ध के समय अर्जुन के मन में उत्पन्न मोह के निवारणार्थ भगवान श्री कृष्ण ने जो कर्म–योग का स्वरूप बतलाया, सांख्य–योग, भक्ति–योग, ज्ञान–योग पर प्रकाश डाला, उससे अर्जुन को मनः विषाद से त्राण मिला। मुख्यतः आज के परिप्रेक्ष्य में प्रेय से श्रेय की ओर कोई कैसे बढ़ सकता है इसका निरूपण भगवद्–गीता में किया गया है।

योग–वाशिष्ठ, पातंजलि योग–दर्शन आदि अध्यात्मिक ग्रंथों की तरह आत्मनिष्ठ बोध उत्पन्न करने वाला एक ग्रंथ अष्टावक्र–गीता भी है। इसमें महर्षि अष्टावक्र ने महाराजा मिथिला नरेश जनक को आत्मा का बोध कराने वाले उपदेश दिये हैं।

राजा जनक अत्यन्त प्रणति भाव से पूछते हैं–प्रभो! मेरी जिज्ञासा को शांत करिये। मुक्ति का उपाय क्या है? आत्म ज्ञान क्या है? और वैराग्य कैसे प्राप्त होता है?

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।
वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद्‌ब्रूहि मम प्रभो।।

श्री मद्‌भगवद् गीता में अर्जुन द्वारा यह शंका प्रकट करने पर कि मन अत्यन्त चंचल है वायु के समान इसका निग्रह करना अत्यन्त दुष्कर है, भगवान श्री कृष्ण ने उपाय रूप अभ्यास और वैराग्य ही बतलाया है।

भगवान पातंजलि ने पंच कोषात्मक स्थूल शरीर, पंच तन्मात्रक सूक्ष्म शरीर, अस्मि रूप कारण शरीर तक फैले स्थूल, सूक्ष्म एवं परा प्रकृति की धारणा, ध्यान एवं सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा ज्ञात करके विवेक ख्याति को उपलब्ध होकर प्रज्ञा से उस पुरुष (आत्मा) का साक्षात्कार करना बतलाया है।

परिस्थिति जन्य विवशता से उत्पन्न वैराग्य बहुत स्थाई नहीं होता। श्री मद्‌भगवद्‌गीता में साक्षात् नारायण रूप भगवान श्री कृष्ण द्वारा उपदेशित हुआ अर्जुन कर्म के स्वरूप को, जगदात्मा के प्रभुत्व (विराट रूप) को जानकर मोह विगत हुआ ऐसा स्वीकार करता हुआ भी क्या बिना साधना किये स्थित–प्रज्ञता को प्राप्त हो सका? उत्तर निषेधात्मक होगा। क्योंकि महाभारत युद्ध में गीतोक्त उपदेश के पश्चात् भी अर्जुन हर्ष–विषाद से मुक्त हुआ नहीं दिखाई पड़ता है। पाण्डव पुत्रों का वध, अभिमन्यु संहार आदि घटनायें प्रमाण रूप हैं।

इस विवेचना का केवल यह मन्तव्य है कि जब तक जीव (साधक) के अन्तःकरण में स्वाभाविक बेचैनी स्वतः नहीं होता, यह जानने के लिये कि मैं कौन हूँ? सुख क्या है? जग–बंधन क्या है? इससे मुक्ति कैसे सम्भव है? अतः अध्यात्म की पात्रता ऐसी मनो–दशा में प्रकट होकर

स्थाई हो पाता है। सद्गुरु कृपा से ऐसे ही साधक में साधना परिपूर्णता को प्राप्त हुआ करती है।

सद्गुरु अष्टावक्र विरक्त चित्त राजा जनक को तत्वज्ञान का उपदेश देते हैं। उपदेश सुनते–सुनते राजा जनक अनायास आत्मसाक्षात्कार को उपलब्ध हुये। विदेह भाव को तत्क्षण अनुभव करते ही परम चैतन्य आत्मा तथा जड़ जनित विकारी देह का बोध जनक को हुआ।

संसार का परित्याग, कर्तव्यों का परित्याग कर वन–प्रान्तर में जाने की निन्दा जैसे श्रीमद्भगवद्गीता में किया गया है तथा काम, क्रोध, मोह, लोभ रहित होकर निःष्काम भाव से कर्म करना ही श्रेयस्कर बताया है। ठीक इसी दृष्टि में अष्टावक्र जी ने ज्ञान का स्वरूप जनक को बताया। शरीर के प्रति मोहासक्त होकर मोक्ष प्राप्ति आकाश कुसुम की तरह काल्पनिक होगा। वे कहते हैं–

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान्विषवत्त्यज।
क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवनद्‌ज।।

हे जनक! तेरी मुक्ति की कामना तभी पूर्ण होगी जब तुम विषयों को विष की तरह त्याग दोगे तथा क्षमा, उदारता, दया, संतोष तथा सत्य रूपी अमृत का निरन्तर पान करते रहोगे।

वे उपदेशित करते हैं–तेरा शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश से निर्मित प्रति पल परिवर्तन शील है। अतः तू इनमें से नहीं है। तुम्हारे अन्दर जो इन सबका साक्षी है वही तुम हो। अब तक मैं और मेरा तुमको शरीर में सम्मोहित किये हुये है। इस मैं रूपी अहंकार और मेरा रूपी दर्प विकार को नष्ट करके ही तुम मोक्ष को प्राप्त हो सकते हो–

न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।
एषांसाक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये।।

गुरु अष्टावक्र जी ने जनक के मौलिक प्रश्नों का समाधान देह से अलग कर चित्त को शांत करने में निहित बताया। ऐसा करने से तत्काल सुख, शांति तथा बंधन मुक्त हो जाओगे। योग–दर्शन में भगवान पातंजलि ने भी ''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' परिणामः स्वरूप स्वरूपावस्था की उपलब्धि बताते हैं। आत्मा का न कोई वर्ण है, न वह आश्रमों से परिवेष्ठित है। धर्म–अधर्म, सुख–दुःख सारे द्वन्द्व मानस की उपज हैं। गुरु अष्टावक्र कहते हैं– राजन! तुम न कर्ता हो, न भोक्ता हो तुम सर्वथा मुक्त ही हो। आत्मा साक्षी विराट, पूर्ण, एक, मुक्त चेतना, क्रियाहीन, असंग, निस्पृह और शांत है। भ्रमवश यह सांसारिक प्रतीत होती है–

आत्मासाक्षीविभुः पूर्ण एको मुक्तश्चिदक्रियः।
असंगोनिःस्पृहः शांतोभ्रमात्संसारवानिव।।

सद्गुरु कहते हैं–वत्स! तू चिरकाल से अपने देहाभिमान से आबद्ध है। इस बंधन को काटे बिना मुक्ति नहीं, अतः इसे ''मैं बोध हूँ'' के ज्ञान से काटकर मुक्त हो जाओ। देहाभिमान अभिनिवेश, अज्ञान का मूल कारण है। यहाँ साधनारत योग जिज्ञासुओं को देहाभिमान से तात्पर्य केवल स्थूल देह से न लेकर अपितु सूक्ष्म, कारण, महाकारण शरीर तक जो व्याप्ति है–वह सब आत्मा के लिये बंधन है, समझना चाहिये।

अपने स्वरूप की विस्मृति के होने के कारण ही यह देह, गेह, संसार का नानत्व यथार्थ भासित होता है। देहादि प्रपंच से चित्त का असंग होना और आत्म बोध की स्मृति एक ही क्षण में घटित होता है। यही सद्गुरू के तीव्र शक्तिपात से सत्शिष्य में घटित होता है। तुर्या अवस्था, योग में बताया गया है। इस अवस्था में निरन्तर रहने पर तुर्यातीत अवस्था में योगी अपने को ब्रह्मस्वरूप में ऐक्य भाव से स्थापित होकर सृष्टि को अपने चिद्विलास के रूप में अनुभव करता है। वह अनुभव करता है कि मैं ही सर्वत्र अस्तित्व रूप में व्याप्त हूं-

एकं सर्वगतं व्योम बहिरंतर्यथा घटे।

नित्यं निरंतरं ब्रह्म सर्वभूतगणे तथा।।

अर्थात्- जड़ हो या जीव उस नित्य सत्ता (ब्रह्म) से कुछ भी अलग नहीं है। जैसे एक ही आकाश घट के अन्दर-बाहर विद्यमान है, उसी प्रकार नित्य व निरन्तर ब्रह्म समस्त प्राणियों में विद्यमान है।

प्रथमतः इस अवस्था का बोध, बुद्धि को आश्चर्य से भर देने वाला प्रतीत होता है। सद्गुरू के उपदेश को सुनते-सुनते राजा जनक आत्म स्थिति को अचानक उपलब्ध हुए और उन्हें कैसा लगा देखें-

अहो निरंजनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।

एतावन्तमहं कालं मोहेनैव विडंबितः।।

राजा जनक बोल उठे- यह कैसा आश्चर्य का विषय है प्रभो! मैं निरंजन पापरहित, परम शांत, प्रकृति से अलग हूं। परन्तु यह कैसा मायाजाल अब तक था कि मैं मोहग्रस्त रहा।

जन्म-जन्मान्तरों से जो देहाभिमान प्रगाढ़ होता गया है वही आत्मबोध का सबसे प्रबल बाधक है। जो बहिर्मुख है, जिन्हें भौतिक शरीर के लिये भौतिक सुख-साधनों की जरूरत है उनको शाश्वत बोध की कमी कैसे हो सकती है?

आत्म साक्षात्कार के पश्चात जनक कहते है-मुझे मेरा और मेरे देह का बोध हो गया है। आत्मा से ही यह देह तथा दैहिक क्रिया सम्पादित है। सत्य तो यह है कि सर्व जगत् मुझसे भिन्न नहीं है। हे प्रभो! आपने अत्यंत कुशलता से मुझे आत्म-ज्ञान प्रदान कराया है, अब मैं सशरीर विश्व का परित्याग करके परमात्मा को साक्षात देख रहा हूं-

सशरीरमहो विश्वं परित्यज्य मयाधुना।

कुतश्चित्कौशलादेव परमात्मा विलोक्यते।।

हे नाथ! आप द्वारा प्रबोधित ज्ञान-चक्षु से जो कुछ मैं अनुभव कर रहा हूं उससे स्वयं चकित हूं। मैं स्वयं को नमस्कार करता हूं। अनेक देहो में होते हुये भी मैं एक ही हूं। मैं कहीं आता-जाता नहीं, परन्तु सम्पूर्ण विश्व में मैं ही व्याप्त हूं-

अहो अहं नमो मह्यमेकोऽहं देहवानपि।

क्वचिन्न गन्ता नागन्ता व्याप्य विश्वमवस्थितः।।

पुस्तक समीक्षा

'महाभारत में योगविद्या'

डॉ. ब्रह्ममित्र अवस्थी, नई दिल्ली

डा0 राजकुमारी त्रिखा द्वारा लिखित पुस्तक ''महाभारत में योगविद्या'' जे0पी0 पब्लिशिंग हाउस 27/28 शक्तिनगर, दिल्ली द्वारा प्रकाशित है। इसमें 300 पृष्ठ है।

इस पुस्तक में महाभारत में प्राप्त योगविद्या के संकेतों के प्रकाश में योग का विवेचन किया गया है। एक लाख श्लोकों वाले महाभारत का अध्ययन करके उसमें से योग सामग्री खोज निकालना एक महान कार्य है। डा0 राजकुमारी त्रिखा, रीडर संस्कृत विभाग, मैत्रेयी कालेज, दिल्ली यूनिवर्सिटी ने एक महान भगीरथ प्रयास किया है, तथा सफलता भी प्राप्त की है। महाभारत में मुख्यतः कौरवों तथा पाण्डवों की युद्ध-गाथा ही है, तथा उसमें योग विद्या के अनुसन्धान का कार्य सरल नहीं है। फिर भी डा0 त्रिखा ने किसी पी0एच0डी0 इत्यादि डिग्री पाने के लिये नहीं, बल्कि अपने अध्ययन-व्यसन के कारण इस गुरुतर कार्य को प्रारम्भ किया और उसमें अधिकाधिक सफलता प्राप्त की है।

इस पुस्तक में योग के व्युत्पत्तिपरक अर्थों से लेकर, उसके दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक पक्षों के साथ-साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी पक्षों पर भी विस्तृत चर्चाएँ की गई है। इन चर्चाओं में प्राचीन तथा आधुनिक का संगम विशेष बात है। योग सूत्र, हठयोगप्रदीपिका तथा घेरण्डसंहिता में वर्णित पारम्परिक योग के ज्ञान को महाभारत में उपलब्ध योग प्रसंगों पर घटित करने का प्रयास दोनों का तुलनात्मक अध्ययन और जहाँ कहीं वैचारिक भिन्नता है, उसका शोधपरक दृष्टि से विवेचन इस पुस्तक की विशेषता है। प्रायः लोग महाभारत के अंश श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित योग को ही जानते है। महाभारत में इतनी अधिक योगविषयक सामग्री मिल सकती है, कि पतञ्जलि के योगसूत्र की विशद व्याख्याएँ की जा सकें- यह इस पुस्तक को पढ़ कर ही जाना जा सकता है। यही नहीं योग के आठों अंगों (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) के विवेचन में उनकी आधुनिक सन्दर्भ में व्याख्या की गई है। उदाहरण के लिये ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य आदि के विविध आयामों को उद्घाटित करते हुए स्थान-स्थान पर बताया गया है कि इनका पालन आधुनिक युग में किस प्रकार उपयोगी तथा प्रासंगिक है। यह इस पुस्तक का सबसे बड़ा गुणात्मक बिन्दु है।

डा0 त्रिखा ने योग का विवेचन करते हुए सम्पूर्ण महाभारत में बिखरे हुए सन्दर्भों को प्रस्तुत किया है। जैसे अहिंसा के विवेचन में अहिंसा धर्म को परमधर्म के रूप में स्वीकारने की लगभग तीस उदाहरण, अहिंसा के शुभ फल को सूचित करने वाले आठ एवं हिंसा तथा अहिंसा के बीच सन्देह को निवारण करने वाले आठ उदाहरण, आदि पर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिकपर्व से उद्धृत किये गये है। यह अत्यन्त कठिन तथा धैर्यपूर्ण कार्य है

जिसको डा० त्रिखा ने सफलतापूर्वक पूरा किया है। पुस्तक की छपाई आकर्षक है, तथा प्रूफ संशोधन में विशेष सावधानी बरती गई है।

इस पुस्तक में ग्यारह अध्यायों के अतिरिक्त भूमिका उपसंहार और तीन परिशिष्ट है। विदुषी लेखिका ने पुस्तक में योग का सामान्य परिचय, साधना विधि का उल्लेख करने के पश्चात्– प्रथम अध्याय में महाभारत में योग की अवधारणा, विविध योगविधियाँ, योगियों, योगाचार्यों तथा योगिनियों का परिचय देकर महाभारत काल में योग की प्रतिष्ठा और प्रचलन का विवरण दिया है। द्वितीय अध्याय में योग साधना हेतु उचित स्थान, काल, विष्टर, शारीरिक स्थिति (आसन) एवं साधना–विधि का, तृतीय अध्याय में योगमार्ग की दुर्गमता, विघ्न तथा विघ्ननिवारक उपायों का, चतुर्थ और पंचम अध्याय में क्रमशः यमों और नियमों की साधना के स्वरूप तथा उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का, षष्ठ, सप्तम तथा अष्टम अध्याय में क्रमशः आसन, प्राणायाम, तथा प्रत्याहार के स्वरूप और उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का, नवम में धारणा, ध्यान और समाधि की साधना और उनसे प्राप्त होने वाली सिद्धियों का, दशम अध्याय में कैवल्य का, एकादश अध्याय में सिद्धयोगियों की समाधि–कालीन एवं व्यवहारकालीन अवस्थाओं और योगभ्रष्ट योगियों का वर्णन किया गया है। उपसंहार में पतंजलि वर्णित योगांगों का महाभारत में प्राप्त योग विवेचन के साथ तुलना करते हुए वैचारिक समानतायें व भिन्नतायें बताई है। कुछ योग सिद्धान्त महाभारत में पाये गये हैं, जिनका पतंजलि के योगसूत्रों में उल्लेख नहीं है। योग के क्रमिक विकास को रेखांकित करने में यह एक महत्वपूर्ण सूचना है।

ग्रन्थ के अन्त में डॉ. त्रिखा ने तीन परिशिष्ट दिये हैं। प्रथम परिशिष्ट में योग साहित्य में सुप्रसिद्ध षट्चक्रों का विवरण चित्रों सहित दिया है। द्वितीय परिशिष्ट में ग्रन्थ में आये मुख्य शब्दों की सूची, पृष्ठ क्रमांक सहित दी है, जो किसी भी शोधग्रन्थ में अत्यन्त उपयोगी और आवश्यक होती है। तृतीय परिशिष्ट में संस्करण निर्देश सहित हिन्दी तथा अंग्रेजी के सहायक ग्रन्थों शब्दकोषों तथा विश्वकोषों की सूची दी गई है, जो शोधार्थियों के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

यह ग्रन्थ पठनीय व संग्रहणीय तो है ही, व्यावहारिक रूप में योगध्यान के प्रति प्रेरणा देने वाला भी है। इस कार्य के लिये लेखिका को शत–शत बधाई तथा शुभकामनाएँ।

■■■

शोक संवेदना

यह सूचित करते हुए अत्यन्त दुःख हो रहा है कि कानपुर निवासी श्री प्रेमचन्द चतुर्वेदी का 20 फरवरी को देहावसान हो गया है। वे गोरखपुर निवासी अनन्य गुरुनिष्ठ श्री स्व. उमापति चतुर्वेदी जी के सुपुत्र थे। श्री प्रेमचन्द जी हमारे काफी पुराने गुरुभाईयों में से एक थे। ये आदरणीय भाई श्री सुरेशचन्द्र व ब. राजेश शर्मा के बहनोई थे। उनका यह असामयिक वियोग सभी के लिए अत्यन्त दुःखद है। उनकी धर्मपत्नी बहिन प्रभा देवी व पुत्र राहुल इस दारुण दुःख में निमग्न हैं। श्री प्रभुजी से प्रार्थना है कि इन्हें इस घोर दुःख को सहन करने की शक्ति दें तथा भाई प्रेमचन्द जी को अपने अमय गोद में स्थान दें।

–सम्पादक

योग और संयोग

लेखक– संजत द्विवेदी (उमापुर)

योग का यथार्थ स्वरूप जानना बड़ी मुश्किल बात है। कारण है– रुकावटें जो हमने स्वयं खड़ी कर ली है, और स्वयं जब तक हम नही समझेंगे तब तक योग के शब्द तक ही सीमित रह जायेंगे, क्योंकि सबसे पहले हमें क्या करना है, और उद्देश्य मेरा क्या है, जब तक ठीक ढंग से इसको नहीं जानेंगे तब तक योगी नही भोगी ज्यादा बनने लायक हो जायेंगे। योग और उसका संयोग या मिलाप करने के लिए स्वयं हम उठ कर खड़े हो जाये, और सबसे पहले अपने स्वरूप को जाने तब बात बनेगी। अपने स्वरूप को जानने का मतलब क्या हुआ– सुनी सुनायी बातों को मान लेना, और मीडिया के माध्यम से प्रवचन सुन लेना या कुछ आसनों एवम व्यायामों को कर लेना या फिर तमाम धार्मिक पुस्तकों को पढ़ लेना, यही सब प्रायः हो रहा है। धार्मिक पुस्तक पढ़ना अच्छी बात है, लेकिन धर्म का आचरण करना दूसरी बात है। क्योंकि पुस्तक जड़ है, जब तक ज्ञान के द्वारा उस दिव्य पुरुष ईश्वर की स्वतः अनुभूति न हो, तब तक ज्ञान भी अधकचरा अधूरा रह जाता है। योग का व्यावहारिक सिद्धान्त क्या है? इसको अच्छी तरह समझना पड़ेगा, और फिर समझकर क्रियाशीलता अर्थात् क्रियान्वन करना पड़ता है, फिर करो और पा जाओ, पाने का मतलब उस परम पिता में खो जाओ। ज्ञान के अनुसार क्रिया और क्रिया अनुसार व्यवहार हो तभी योग का संयोग बनता है। वरना शीशे वाली बात है, जैसे तेरी सूरत वैसे ही दर्पण में तेरा चेहरा।

मन को ही हम सब कुछ दे बैठे है फिर तो वह मन भी पाते–पाते मुझे कही का नही छोड़ा, धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का यही कहावत चरितार्थ होने लगती है। नाम तो रख लिया मनराज माने मन का बादशाह, लेकिन व्यवहारिकता में मनगुलाम मन के गुलाम बन कर रह जाते है, क्योंकि इसको खुला छोड़ रखा है, सब उल्टा–पुल्टा करता रहता हैऔर इसके चलते रोगी, आलसी, निकम्मा, कामचोर, सब कुछ हमें बना देता है। फिर हमारे ऊपर अपना साम्राज्य कर जैसा चाहता है वैसा करवाता है। दसो इन्द्रियों पर सब पर काबू रखकर अकेला मन तानाशाह बन जाता है।

जो मन पर असवार है, सोई साधु कोई एक।
मन के मते मत चलिए मन के मते अनेक।।

जो मन पर असवार है, जो मन की बाते नही मानता वह सज्जन पुरुष (साधु) कोई विरला है।

मनमुख होना माने हमेशा घाटे का सौदा करना, योग का संयोग तभी होगा जब हम राजी नही होंगे। राजी होने का मतलब सिर्फ यह नहीं कि जो भी आये, सब की चापलूसी करना, यदि कोई व्याधि से युक्त है तो सबसे पहले रोग के बारे में जानना होगा और रोग का कारण क्या है

इसकी भी समुचित जानकारी होनी चाहिए। फिर रोग का निवारण इस विधि से किया गया कि इलाज रोगी को रोग से मुक्त कर देगा। कहने का मतलब यह है कि योग में संयोग का मिलना भी उतना ही जरूरी है, जितना कि विशुद्ध आत्मा द्वारा परमात्मा को जानने की इच्छा करना।

जब हमारी दिनचर्या सही ढंग से नहीं हो पाती तो हम रोगी होते है, रोग की दावत भी मेरी आदतों से प्रारम्भ होती है। मन का बोझिल होना, अपच, आलस्यपूर्ण दिनचर्या ये सभी हरकतें मन से प्रारम्भ होती है।

मन मतंग माने, नहीं,। जब तक गढ़ा न खाय।।

लेकिन विचार करने से स्पष्ट हो जाता है। गड्ढा या दुःख देखने के बाद भी यह पागल मन नहीं मानता क्योंकि यह आदत में तब्दील हो चुका है।

अब असली प्रकरण पर चलने की जरूरत है, वह है योग। यह शब्द जिसको सब लग जाता है, और लग जाने के बाद, यदि साधक या योग का विद्यार्थी क्रिया रूप में (क्रियाशीलता) इसे करने की बात नहीं आती तो समझो अभी हम योग से काफी दूर है। इसके लिए दूर दृष्टि, पक्का इरादा होना आवश्यक है, फिर धीरे–धीरे उस परम करुणा निधान की कृपा से स्वतः मंजिल मिलती चली जायेगी।

आधार क्या है, जिसके सम्बल पर कई किले के मकान खड़े है, वही सम्बल यही सहारा जिसके सहारे को सारी दुनियाँ आँचल खोल कर भीख माँगती है, जिसके दीदार से सारा जहाँ प्रकाश पा रहा है, वह पथ प्रदर्शक, जग नियन्ता अकारण दयालु परम पिता परमेश्वर सद्गुरु शिव भगवान, तेरे मन के मन्दिर में छुपकर बैठे है, तेरे सारे हरकतों को देख रहे है अब तो निश्चल भाव से अपने प्रभु को जानो क्यों बाहरी दुनियाँ में रमा हुआ है। यही मालिक का अमर सन्देश है।

भारत विश्व का आध्यात्मिक केन्द्र है। इस पुण्य भूमि में समय–समय पर सत्य का प्रकाश देकर अज्ञान रूपी अन्धकार की निवृत्ति करने के लिए महापुरुषों के लिए महामानव के रूप में भगवद्शक्ति का आविर्भाव होता रहता है, जिस व्यक्ति का कर्म शुद्ध, विचार शुद्ध और भावनायें पवित्र रहती है, तो कर्मानुसार वही व्यक्ति पवित्र पुण्य आत्मा के रूप में अवनि मंडल पर अवतरित होता है।

योग का संयोग विरले लोगों को प्राप्त होता है, क्योंकि जब तक हृदयानुभूति नहीं होती तब तक योग में प्रवेश पाना मुश्किल है। आज का भौतिक समाज सिद्ध योग को "योगा" से जोड़ रहा है, शरीर की विभिन्न हरकतें भी करते हुए अपने को योगी सिद्ध करना चाहता है। लेकिन वास्तविकता यह है कि जब तक हम एक दूसरे को आत्मवत् समझकर एक दूसरे के सुख–दु ख को नहीं समझेंगे तब तक योग मार्ग पर अग्रसित नहीं हो सकते। जब तक क्रिया अनुसार व्यवहार और व्यवहार अनुसार धर्माचरण के बारे में नहीं समझेंगे तब तक सही ज्ञान का बोध नहीं होगा। ज्ञान का बोध हो जाने पर ठीक–ढंग से आचरण करना यही योग का संयोग और मिलन है।

यथायोग्य संसार का व्यवहार करते हुए भी जिस पुरुष की दृष्टि में यह जगत ज्यों का त्यों बना रहने पर भी विलीन हो जाता है, आकाश के समान शून्य प्रतीत होने लगता है वह जीवन्मुक्त कहलाता है।

योग परायण मनुष्य साधक तभी हो सकता है जब वह गुरुदेव भगवान में अटूट श्रद्धा विश्वास के साथ क्रिया योग की वेध दीक्षा प्राप्त करे। ऐसा साधक, एक वर्ष में अवश्य सिद्ध हो सकता है।

लेकिन, देखने की एक बात और है, थोड़े-दिन के बाद साधक के मार्ग में, कहीं अहंकार की छाया तो आकर खड़ी नहीं हो रही है? इसलिए साधक को चाहिए कि वह काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि बुरे वासनों से बचकर रहे।

ऐसा वर दे दो गुरुजी

जगदीश राए बंसल "अधम"
डी.सी.एम. गोहाना (हरियाणा)

ऐसा वर दे दो गुरु जी, मेरा बेड़ा पार हो।
जयकारा लगाके आपका, घर-घर मंगलाचार हो।।

होगा जब उद्धार मेरा, उस दिन का इन्तजार है
झंडा ऊंचा जग में तेरा, मेरा भी सिद्ध काज है
बरसाने जैसी होली होगी, सिद्धेश्वर की जय-जयकार हो।। ऐसा वर

कोई तुझको सर्व समर्थ, कोई योगीराज कहता है,
मैं तो बस इतना ही बोलूं, पिता पुत्र का नाता है
मुझ को अपना शरण दे दो, जहाँ प्रभु रामलाल हो।। ऐसा वर

अज्ञानता है मुझ में ऐसे है आसमां में बादल जैसे
दया की दृष्टि कर दो ऐसे, नरसी भक्त पर की थी जैसे
राम रति जैसी शक्ती दे दो, जय-जय गुरु देवा हो।। ऐसा वर

बादल गरजे बिजली चमके, अजब रूप निराला है
कहीं पर्वत कहीं रेत के टीले, कहीं पर सागर गहरा है
कहीं फलों से बाग लदे हैं, कहीं गुफा सजाए हो।। ऐसा वर

आपके घर अन्धकार नहीं, कोटि सूर्य उजाला है
बाल न बांका कर सके, जिसका तू रखवाला है
आ जाए लहर शिवा में ये सर्व सामर्थ्य महान हो।। ऐसा वर

आप नहीं सुनोगे दाता किसको अर्ज सुनाऊंगा
अगर कभी रूठ गए तो, चरण पकड़ मनाऊंगा
पानी पतला कौआ काला ये "अधम" तुझे स्वीकार हो।। ऐसा वर

श्री गुरुदेव द्वारा दो परिवारों की प्राण-रक्षा

प्रेषक : दिनेश शर्मा, जोरा

कदम-कदम पर हम सभी की रक्षा करने वाले, हम सभी के प्राणप्रिय हमारी आत्मा, हम सभी के रक्षक, हमारे गुरुदेव महाराज हर समय हम सभी के साथ रहते है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इस कथानक में श्री रविन्द्र जी जो गाजियाबाद भोपुरा में रहते है, और इनके जीजाजी श्री जयरिषी जी जो शाहदरा दिल्ली में रहते है। इन दोनों के परिवारों की प्राण रक्षा श्री गुरुदेव महाराज ने किस प्रकार की यह आप भी जाने।

यह अभी हाल की ही ताजा घटना है। तारीख 1 दिसम्बर 2006 को क्वार की नोमी थी और 2 दिसम्बर 2006 को दशहरा था। जो हमारे गुरुदेव महाराज का जन्मोत्सव का दिन है। हर वर्ष की तरह इस वर्ष भी गुरुदेव महाराज का जन्मोत्सव बड़े धूम-धाम से मनाया गया। श्री रविन्द्र जी व श्री जयरिषी जी सपरिवार नौमी वाले दिन ही अपनी गाड़ी द्वारा संवाई आश्रम मे पहुँच गये और शाम को आश्रम मे हो रहे भजन-कीर्तन व प्रवचन का लाभ उठाकर रात्रि मे विश्राम किया। सुबह श्री गुरुदेव जी का जन्म दिन था इसलिए वे सभी लोग जल्दी-जल्दी जागे और सभी ने अच्छी तरह स्नान ध्यान करके श्री गुरुदेव जी महाराज के स्वरुपों को सहर्ष माल्यार्पण करके श्री सिद्धगुफा के अंदर जाकर दर्शन किया। प्रसाद व आर्शीवाद ग्रहण कर और थोड़ा विश्राम करके दिल्ली चलने की तैयारी शुरु कर दी। गाड़ी मे सवार होने से पहले एक बार दूर से ही हाथ जोड़कर शीश झुकाया। पहले श्री सिद्धगुफा को फिर श्री गुरुदेव महाराज जी के स्वरुपों को प्रणाम किया और चलने की आज्ञा मांगते हुए गाड़ी मे सवार हो गये। गाड़ी चालू कर के आश्रम के मुख्य द्वार पर जैसे ही पहुँचे एक ब्रह्मचारी जी ने गाड़ी रुकवाई और बोले कल चले जाना आज रात का और प्रोग्राम देखलो। ये लोग नौकरी पेशा वाले है ड्यूटी की वजह बताकर ब्रह्मचारी जी से क्षमा मांगी और बोले क्षमा करना महाराज रुका नहीं पायेंगे। यह कहते हुए आश्रम से दिल्ली के लिए रवाना हो गये। घर पहुँचने की जल्दी के कारण इन्होंने जो सबसे ज्यादा शार्ट-कट था वह अपनाया। जो आश्रम से चंदौली होता हुआ हाथरस- हाथरस से अलीगढ़ होता हुआ दादरी और दादरी से दिल्ली निकलता है। यह वास्तव में छोटा रास्ता है।

दशहरा होने की वजह से जगह-जगह श्री राम-रावण की झांकियाँ निकल रही थी, इस लिए सड़कों पर जाम लगे हुये थे। जब काफी देर बाद रोड जाम खत्म हुआ तो इन्होंने अपनी गाड़ी चलाना शुरु कर दी। चंदौली से थोड़ा सा आगे निकले थे कि एक ट्रक बड़ी तेजी से इनके बराबर से गुजरा तथा उसके टायर के नीचे से एक पत्थर का रोड़ा निकला और बड़े जोर से इनकी गाड़ी के आगे वाले शीशे को तोड़ता हुआ रविन्द्र के भाई जी जो गाड़ी चला रहे थे, उनको आकर लगा। पत्थर लगते ही कुछ पल के लिए इनकी आंखे बंद हो गयी तथा लड़खड़ाती हुई गाड़ी सड़क के

किनारे आकर खड़ी हो गयी। जब इनकी आँख खुली तो देखा कि इनके ऊपर गाड़ी के टूटे शीशे पड़े हुये थे। बड़े आश्चर्य की बात है कि शीशे और पत्थर दोनों बड़ी तेजी से इनकी गाड़ी में लगे, लेकिन किसी को एक खरोंच तक नहीं आयी। आँख बंद होने के बाद भी गाड़ी सड़क पर लहराई थी, फिर भी एक साइड आकर बंद हो गयी। ये सब कुछ दो या चार सेकण्ड के अंदर हो गया। वे सभी अपनी गाड़ी से उतरे और गाड़ी का निरीक्षण किया और बोले प्रभो! आपने हमें सही सलामत बचा लिया। आप धन्य है। यह कहते हुये गाड़ी में से टूटे शीशे साफ करके आगे को चल दिये। हाथरस शहर में जाकर गाड़ी का शीशा डलवाया और आगे का सफर शुरू किया। वे लोग काफी लेट होते जा रहे थे, रास्ता आगे अभी काफी था। दादरी से पहले इन्होंने गाड़ी को थोड़ा-सा आराम देने की वजह से एक जगह रोका और सभी ने चाय पीकर विश्राम किया। और आगे का सफर दादरी से नौएडा वाले रूट पर शुरू कर दिया।

रात तो इनको हो ही गयी थी। नौएडा में सेक्टर 37 से इन्होंने गलत साइनबोर्ड पढ़कर गाड़ी को बांयी ओर मोड़ दिया और उसी रोड पर काफी आगे निकल गये। ये लोग अब रास्ता भटक गये थे। चारों तरफ जंगल ही जंगल था लेकिन इन्होंने गाड़ी नहीं रोकी और आगे बढ़ते गये। ये सभी काफी घबरा भी रहे थे, अब आगे कच्ची रोड थी। जब इन्होंने काफी आगे नजर दौड़ाई तो इन्हें दूर साइड में खड़ी एक गाड़ी की पार्किंग लाइट जलती-बुझती नजर आयी। इन्होंने समझा पुलिस की गाड़ी होगी। जैसे-जैसे इनकी गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी वैसे-वैसे वह गाड़ी धीरे-धीरे बीच रोड पर आती जा रही थी लेकिन उस गाड़ी की पार्किंग लाइट अब भी जल-बुझ रही थी। जब ये उस गाड़ी के करीब पहुँचे तो वह गाड़ी बीच रोड पर आकर खड़ी हो गयी। इन्हें समझते देर नहीं लगी कि यह गाड़ी लुटेरों की है। ये अपनी गाड़ी को उस गाड़ी के पीछे से निकालते हुए काफी तेजी से आगे निकल गये। अब लुटेरों वाली गाड़ी ने इनकी गाड़ी का पीछा किया। इन्होंने लुटेरों वाली गाड़ी को अपनी गाड़ी के नजदीक आती हुई देखी तो अपनी गाड़ी की स्पीड और बढ़ा दी। अब इनकी गाड़ी काफी तेजी से उस कच्ची रोड पर दौड़ रही थी। तभी सामने रोड पर एक काफी गहरी खाई दिखाई दी। ये कुछ समझ पाते तब तक इनकी गाड़ी उस गहरी खाई को लाँघ कर पार हो गयी थी और एक साइड में मिट्टी पर लुढ़कती हुई पलट गयी। पूरी एक पलटी खाकर लुढ़की और सीधी खड़ी हो गयी। जब लुटेरों वाली गाड़ी के लोगों ने देखा कि गाड़ी इतनी गहरी खाई कूदकर पलट कर लुढ़क रही है तो वे अपनी गाड़ी को वापस मोड़कर चले गये। उन्होंने सोचा कि ये तो सभी मर गये होंगे। यह सोचकर लुटेरे वहाँ से वापस चले गये। जैसे ही इनकी गाड़ी खाई लाँघकर पलटी वैसे ही इस गाड़ी में सवार सभी गुरुभाई व बहिनों के मुख से 'जयगुरुदेव' का एक साथ बड़े जोर से अखण्ड जयकारा गूंजा तथा सभी बोले गुरुदेव हमारी रक्षा करो। इतना कहना था कि पलटी हुई गाड़ी लुढ़कती हुई सीधी खड़ी हो गयी। और किसी के एक खरोंच तक नहीं आयी। ऐसा प्रतीत होता था कि किसी ने गाड़ी को हाथों से उठाकर सीधा खड़ा कर दिया है। ये सभी लोग गाड़ी से उतरे और गाड़ी का निरीक्षण किया फिर ये सड़क के नीचे से सड़क के ऊपर आये और लुटेरों वाली गाड़ी को जाते हुए देखा तो थोड़ी जान में जान आयी। तभी ये रास्ता ढूंढने लगे जो दिल्ली जाता हो। जहां यह गाड़ी पलटी थी आगे वह रोड ही बंद था। सभी विचार कर ही

रहे थे कि कौन सा रास्ता दिल्ली जायेगा? तभी घने अंधेरे में से 10 या 12 साल का एक लड़का नये लाल रंग के कपड़े धारण किए हुये वहां धीरे-धीरे चलता हुआ आया और बिना किसी झिझक के बोला क्यों मरने के लिए इधर आये हो? गाड़ी को पीछे–पीछे चलाकर आगे ले जाओ। आगे से एक रास्ता ऊपर निकलता है, वहाँ से बाएं एक रोड जाती है, जो आगे चलकर दाये मुड़ेगी। वह सीधी रोड गाजियाबाद दिल्ली हाईवे पर जायेगी, उसी पर सीधे चलना, उसको नहीं छोड़ना, नहीं तो फिर भटक जाओगे। उसने एक फटकार इन सभी को लगाई कि "मना" करने के बावजूद भी चल देते है। कहना मानते नहीं है। जब भुगतान होता है तो परेशान करते है।" यह कहते हुए वह बच्चा महाराज आगे–आगे अंधेरे में विलीन हो गये। और ये सभी खड़े सहमे से उनको जाता हुआ देखते रहे। अचानक इन सभी को एक झटका सा लगा और ये सभी लोग अपनी गाड़ी की तरफ दौड़े और उसमें बैठ गये। गाड़ी चालू करके बच्चा महाराज के बताये हुए रास्ते पर चल दिये। तब जाकर ये दोनों परिवार अपने–अपने घर पहुँचे।

किसी ने सत्य ही कहा है कि जब सहायता के सारे रास्ते बंद हो जाते है तो एक ही सहारा नजर आता है और वह है हमारे परम पूजनीय– गुरुदेवजी महाराज।

अब कोई न सहारा बिन तेरे। गुरुदेव सांवरिया मेरे!!

□□□

निद्रादौ जागरस्यान्ते भावं उपपद्यते सदा।
तं भावं भावयेद् योगी निश्चितं मुक्तं एव सः।।

संसार को प्राप्त जीव अर्थात् सांसारिक लोग स्वप्न और जागरण वाले हैं अर्थात् वे सोते भी हैं और जागते भी हैं। किन्तु तत्वसम्पन्न योगीजन न जागते हैं और न सोते ही हैं। वे स्वप्न–जागरण विहीन हैं। स्वप्न में चिदंश नहीं रहता और जागरण में विषयों का ग्रहण होता है। इसलिए विद्वान पुरुष स्वप्न और जागरण से अतीत को तत्व कहते हैं। तत्व के जानकार विद्वान तत्व को भाव और अभाव दोनों से अतीत, स्वप्न और जागरण से परे एवं मरण और जीवन से रहित जानते हैं। निद्रा के आदि में और जागरण के अन्त में जो भाव होता है, उस भाव की जो योगी भावना करे, वह निश्चय रूप से मुक्त ही है। (अमनस्कयोग)

कैसे विसार दूँ?

मनु शर्मा
गंगापुरसिटी

जो आँखों की देहरी से उतरकर
एक द्रव्य की भाँति
मेरी रगों में बहता है
और, आत्मा में अपनी उपस्थिति
अनुभूति से प्रस्तुत करता है,
मैं ! उस परम द्रव्य को
कैसे विसार दूँ?

जो श्वासों की आती जाती रफ्तार को
सहज ही स्तब्ध कर देता है
मैं ! उस परम सहज को
कैसे विसार दूँ?

मृत्यु का भय, जीवन के उद्देश्य
मोक्ष के प्रयास और प्राप्ति के स्वप्न
जैसे सब बेकार से लगते हैं
बस ! डूब जाना चाहता हूँ मैं
अब इन सब से आगे
उस परम शून्यता में
जहाँ ना प्राप्ति की लालसा है
ना खो देने का पश्चाताप
शेष है तो बस डूबना और डूबते ही चले जाना
मैं उस परम अथाह सागर को
कैसे विसार दूँ?

जहाँ जाकर सारे बोध समाप्त हो जाते हैं
केवल परम बोध परम ज्ञान रह जाता है,
उस परम बोध में उपस्थित
आनन्द से आच्छादित
अभय, अखण्ड, परम शान्त,
परम रमणीक, मौन बैठे मेरे सद्गुरु को मैं
कैसे विसार दूँ?

मेरी समस्त वेदनाओं से रिसता खून
मेरे प्रणय मेरी अर्चना का जल है
जिसे मैं उस प्रतिमा पर, चढ़ा देता हूँ
और स्वयं प्रणय से भीग जाता हूँ।
जिसके प्रणय का एक ही बहाव
मुझे बेसुध कर जाता है
मैं! उस आनन्द की सुध को
कैसे विसार दूँ?

मेरी सम्पूर्ण सुन्दरता उसका ही दृश्य है
उस सम्पूर्ण सुन्दरता को मैं समेटकर भी
बिखरा सा पाता हूँ
कभी अंतर्जगत में तो कभी बाह्य धरातल पर
मैं उस परम सुन्दरता की गंध को
कैसे विसार दूँ?

जिसके मधुरस में सन जाना चाहता है 'मन'
मैं उस मधुमास को
कैसे विसार दूँ?

जिसके प्रणय का एक ही बहाव
मुझे बेसुध कर जाता है
मैं उस आनन्द की 'सुध' को
कैसे विसार दूँ?

शब्दों की माला भावनाओं के तार
प्रेम की सुगन्ध और आत्मा की उज्ज्वलता
मेरे गुरुदेव 'मुक्ति माला' को मैं
कैसे उतार दूँ?

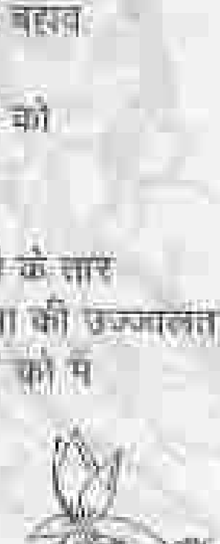

'योग' परब्रह्म पिता, 'श्रद्धा' देवी माता है !

राजीव कुमार शर्मा, ऊना (हि.प्र.)

योग परब्रह्म पिता, श्रद्धा देवी माता है।
शक्तिपात बरसे, सिद्धगुफा आता है।।
युग जग काल चक्र घुमाने वाले।
आवागमन छुड़ाने वाले।।
चमत्कारी सिद्ध गुफा, सवाई धाम।
त्रय तापों का बंधा पाया शुद्ध चित्त विश्राम।।
एक बार अलख जगा दे, अधोगति दूर भगा दे।
योग कृपा बरसाने वाले।
समत्व आह्लाद जगाने वाले।।
गुरुमार्ग अपनाना सिद्धयोग सिखाता है।
योगीजन समागम शुभ योग कराता है।
अज्ञान का आवरण हटा दे।
क्लेश दमन कर ध्यान संवेग बढ़ा दे।।
नाम खुमारी बढ़े, चलो महा मेले में।
सर्वस्व न्यौछावर करो पावन वेले में।
सिद्धेश्वर! अविरल गंगा बहती है।
तपस्थली महिमा अपार कृपा बरसती है।
एक बार जय घोष लगा दे।
क्लिष्ट कर्म पल में कटा दे।।
मूल रूप नेपाल विराजे संस्कार हमारा जागता है।
पुण्य उदय कृपा बरसे दीक्षा मिलती क्लेश भागता है।
जन्म जन्मान्तरों के योग भ्रष्ट सन्मार्ग चल पड़ते हैं।
प्रभु जिन्हें अपनाले बड़भागी विरले ही मिलते हैं।।
भव बन्धन कटा दे।
योग का डंका बजा दे।।
गुरु का शब्द मात्र संग है, इसका सौदा तोल।
जय तो मूढ़ मन ! महायोगेश्वर की जय बोल।।
गुरु ही परब्रह्म पिता, श्रद्धा देवी माता है।
शक्तिपात बरसे, सिद्धगुफा आता है।।

आरोग्य प्राप्ति की केवल इच्छा पर्याप्त नहीं; नियमित योगासन भी अवश्य कीजिये !

आरोग्य प्राप्ति प्रत्येक मनुष्य की प्रथम अभिलाषा रहती है, किन्तु कितने लोग ऐसे हैं जो गम्भीरतापूर्वक इसके लिए प्रयत्न करते हैं? योगासनों और स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनेक रोगों के निदान में ये सहायक होते हैं। इसी दृष्टि से यहाँ कुछ प्रमुख आसनों का वर्णन प्रस्तुत है, जिसका मनोयोग से नियमित अभ्यास करके लाभान्वित हुआ जा सकता है। —सम्पादक

चित लेटकर करने के आसन :

(1) पादांगुष्ठ नासाग्र स्पर्शासन : पृथ्वी पर समसूत्र में पीठ के बल सीधा लेट जाये। दृष्टि को नासाग्र में जमाकर दायें पैर के अंगूठे को पकड़ कर नासिका के अग्र भाग को स्पर्श करें, इसी प्रकार पुनः-पुनः करें, मस्तक, बायाँ पैर और नितम्ब पृथ्वी पर जमे रहें। इसी प्रकार दायें पैर को फैलाकर बायें पैर के अँगूठे को नासिका के अग्रभाग से स्पर्श करें। फिर दोनों पैरों के अंगूठे को दोनों हाथों से पकड़ कर नासिका के अग्रभाग को स्पर्श करें। कई दिनों के अभ्यास के पश्चात् अंगूठा नासिका के अग्र भाग को स्पर्श करने लगेगा।

फल : कमर दर्द, घुटने की पीड़ा, कन्द-स्थान की शुद्धि एवं उदर सम्बंधी रोगों का नाश करता है। यह आसन स्त्रियों के लिए भी लाभदायक है।

(2) पश्चिमोत्तानासन : दोनों पाँवों को लम्बा सीधा फैलावें। दोनों हाथों की उँगलियों से दोनों पैरों की उंगलियों को खींचकर, शरीर को झुकाकर माथे को घुटने पर टिका दें, यथाशक्ति वहीं पर टिकाये रहें। प्रारम्भ में दस-बीस बार शनैः शनैः रेचक करते हुए मस्तक को घुटने पर ले जायें और इसी प्रकार पूरक करते हुए ऊपर उठाता चला जावे।

फल : पाचन शक्ति को बढ़ाना, कोष्ठबद्धता को दूर करना, सब स्नायु और कमर तथा पेट की नस-नाड़ियों को शुद्ध एवं निर्मल करना, बढ़ते हुए पेट को पतला करना इत्यादि। इससे मन्दाग्नि, कृमि-विकार तथा वात-विकार आदि रोग दूर होते हैं। इस आसन को कम से कम दस मिनट तक करते रहने के पश्चात् उचित लाभ प्रतीत होगा।

(3) सम्प्रसारण भू-नमनासन : पैरों को लम्बा करके यथाशक्ति चौड़ा फैलायें। तत्पश्चात् दोनों पैरों के अंगूठे को पकड़कर सिर को भूमि में टिका दें।

फल : इससे चक्र और जंघा प्रदेश तन जाते हैं। टाँग, कमर, पीठ और पेट निर्दोष होकर वीर्य स्थिर होता है।

(4) जानु शिरासन : एक पाँव को सीधा फैलाकर दूसरे पाँव की एड़ी गुदा और अंडकोष के बीच में लगाकर उसके पाद-तल से फैले हुए पाँव की रान को दबावें। पैर की उंगलियों को दोनों

हाथों से खींचकर धीरे–धीरे आगे को झुकाकर माथे को पसारे हुए घुटने पर लगा दें। इसी प्रकार दूसरे पाँव को फैलाकर माथे को घुटने पर लगावें।

फल: इस आसन के सब लाभ पश्चिमोत्तानासन के समान है। वीर्य–रक्षा तथा कुण्डलिनी जाग्रत करने में सहायक होना यह इसमें विशेषता है। इसको भी वास्तविक लाभ–प्राप्ति के लिए कम से कम दो मिनट करना चाहिये।

(5) हृदयस्तम्भासन : चित लेटकर दोनों हाथों को सिर की ओर तथा दोनों पैरों को आगे की ओर फैलावें। फिर पूरक करके जालंधर–बन्ध के साथ दोनों हाथों और दोनों पैरों को छः सात इंच की ऊँचाई तक धीरे–धीरे उठावें और वहीं पर यथा शक्ति फैलावें। जब श्वास निकलना चाहे, तब पैरों और हाथों को जमीन पर रखकर धीरे–धीरे रेचक करें।

फल: छाती, हृदय एवं फेफड़े का मजबूत और शक्तिशाली होना और पेट के सब प्रकार के रोगों का दूर होना।

(6) उत्तानपादासन : चित लेटकर शरीर के सम्पूर्ण स्नायु ढीले कर दें, पूरक करके धीरे–धीरे दोनों पैरों को ऊपर उठावें, जितनी देर आराम से रख सकें रखकर पुनः धीरे–धीरे भूमि पर ले जायें और श्वास को धीरे–धीरे रेचक कर दें। प्रथम बार तीस डिग्री तक, दूसरी बार पैंतालीस डिग्री तक, तीसरी बार साठ डिग्री तक पैर को उठावें। इस आसन के नौ भेद किये गये हैं।

(क) द्विपाद–चक्रासन – हाथों के पंजे नितम्ब के नीचे रखें, चित्त लेटें, एक पैर घुटने में मोड़कर घुटने को पेट के पास लाकर तथा दूसरा पैर किंचित ऊपर उठाकर बिल्कुल सीधा रखें और इस प्रकार पैर चलायें जैसे साइकिल पर बैठकर चलाते हैं। इससे नितम्ब, कमर, पेट और टाँगें निर्दोष होकर वीर्य शुद्ध, पुष्ट और स्थिर रहता है।

(ख) उत्थित–द्विपादासन – चित लेटकर दोनों पैर 45 डिग्री तक ऊपर उठाकर जमीन से बिना लगाये धीरे–धीरे ऊपर–नीचे करें। इससे पेट के स्नायु मजबूत होते हैं और मलत्याग क्रिया ठीक होती है।

(ग) उत्थित एकैक पादासन – चित लेटकर, दोनों पैर (एक पैर 20 डिग्री से और दूसरा पैर 45 डिग्री से) अधर में रखकर जमीन से बिना लगाये हुए ऊपर–नीचे करें। इससे कमर के स्नायु मजबूत होते हैं, मलोत्सर्ग क्रिया ठीक रहती है। वीर्य शुद्ध और स्थिर होता है।

(घ) उत्थित हस्त मेरुदण्डासन – हाथ पैर एक रेखा में सीधे फैलाकर चित लेटें। दोनों हाथ उठाकर पैरों की ओर ले जायें। इस प्रकार पुनः–पुनः पीठ के बल लेटकर पुनः पुनः उठें। इससे कमर, छाती, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(ङ) शीर्षबद्ध हस्त मेरुदण्डासन – पूर्ववत् पीठ के बल लेटकर, सिर के पीछे हाथ बाँधे, बिना पैर उठाये कमर से शरीर ऊपर उठावें। इससे पेट, छाती, गर्दन, पीठ और रीढ़ के दोष दूर होते हैं।

(च) जानु स्पृष्ट भाल मेरुदण्डासन – उपर्युक्त आसन करके घुटना मोड़कर बारी–बारी धीरे–धीरे माथे से लगावें, नीचे का पैर भूमि पर टिका हुआ सीधा रहे। इससे यकृत

(जिगर), प्लीहा (तिल्ली), गिल्टी आदि नीरोग होकर पेट, गर्दन, कमर, रीढ़, ऊरु बलवान और निर्विकार होते हैं।

(छ) **उत्थित हस्तपाद मेरुदण्डासन** – पूर्ववत् पीठ के बल लेटकर हाथ–पैर दोनों एकसाथ ऊपर उठावें और पुनः पूर्ववत् एक रेखा में ले आवें, चार–पाँच बार ऐसा करें। इससे पेट, छाती, कमर और ऊरु निर्दोष होते हैं।

(ज) **उत्थित पाद मेरुदण्डासन** – पैर सामने को फैलाकर हाथों की कोहनियों के बल धड़ को उठावें, अनन्तर पैर 45 डिग्री तक ऊपर उठाकर ऊपर–नीचे करें। इससे कमर, रीढ़ और पेट निर्दोष होते हैं।

(झ) **भालस्पृष्ट द्विजानु मेरुदण्डासन** – ऊपर कहे अनुसार ही करें, किन्तु इसके अतिरिक्त सिर दोनों घुटनों में लगा दें। इससे पीठ, छाती, रीढ़, गर्दन और कमर के सब विकार दूर होते हैं।

(7) हस्त पादांगुष्ठासन : चित्त लेटकर दोनों नासिका से पूरक करके बायें हाथ को कमर के निकट लगाये रखें, दूसरे दायें हाथ से दायें पैर के अंगूठे को पकड़ें और समूचे शरीर को जमीन पर सटाये रखे, दायाँ हाथ और पैर ऊपर की ओर उठाकर तना हुआ रखें। इसी प्रकार दायें हाथ को छाती और कमर से लगाकर बायें हाथ से बायें पैर के अंगूठे को पकड़कर पूर्ववत् करना चाहिये। फिर दोनों हाथों से दोनों पैरों के अंगूठे पकड़कर उपर्युक्त विधि से करना चाहिये।

फल : सब प्रकार के पेट के रोगों का दूर होना, हाथ–पैरों का स्वस्थ आकार और रक्तशुद्धि।

(8) पवन मुक्तासन : चित्त लेटकर पहले एक पाँव को सीधा फैलाकर दूसरे पाँव को घुटने से मोड़ कर पेट पर लगाकर दोनों हाथों से अच्छी प्रकार दबावें। फिर इस पाँव को सीधा करके दूसरे पाँव से भी पेट को खूब इसी प्रकार दबावें। तत्पश्चात् दोनों पाँवों को इसी प्रकार दोनों हाथों से पेट पर दबावें। पूरक करके कुम्भक के साथ करने से अधिक लाभ होता है।

फल : उत्तानपादासन के समान ही इसके सब लाभ हैं। वायु को बाहर निकालने में तथा शौचशुद्धि में विशेषरूप से सहायक होता है, बिस्तर पर लेटकर भी किया जा सकता है, देर तक कई मिनट तक करते रहने से वास्तविक लाभ की प्रतीति होगी।

(9) ऊर्ध्व सर्वांगासन : भूमि पर चित्त लेटकर दोनों पैरों को तानकर, धीरे–धीरे कन्धों और सिर के सहारे से पूरे शरीर को ऊपर खड़ा कर दें। आरम्भ में हाथों के सहारे से उठावें, कमर और पैर सीधे रहें, दोनों पैरों के अंगूठे दोनों आँखों के सामने रहें। मस्तक कमजोर होने के कारण जो शीर्षासन नहीं कर सकते हैं, उनको इस आसन से लगभग वही लाभ प्राप्त हो सकते हैं, जो शीर्षासन से मिलते हैं। एक पाँव को आगे और दूसरे को पीछे इत्यादि करने से इसके कई प्रकार हो जाते हैं। इसमें ऊर्ध्व पद्मासन भी लगा सकते हैं।

फल : रक्त शुद्धि, भूख की वृद्धि और पेट के सब विकार दूर होते हैं। सब लाभ शीर्षासन के समान जानने चाहिये।

(10) सर्वांगासन (हलासन) : चित्त लेटकर दोनों पाँवों को उठाकर, सिर के पीछे

जमीन पर इस प्रकार लगाये कि पाँव के अंगूठे और उंगलियाँ ही जमीन को स्पर्श करें, घुटनों सहित पाँव सीधे समसूत्र में रहे, हाथ भूमि पर रहे। दूसरा प्रकार एक और भी है, जिसमें दोनों हाथों को सिर की ओर ले जाकर पैर के अंगूठों को पकड़ कर तानें।

फल : कोष्ठबद्धता दूर होना, जठराग्नि का बढ़ना, आँतों का बलवान होना, अजीर्ण, प्लीहा, यकृत तथा अन्य सब प्रकार के रोगों की निवृत्ति और क्षुधा की वृद्धि।

(11) **चक्रासन** : चित लेटकर हाथों और पैरों के पंजे भूमि पर लगाकर कमर का भाग ऊपर उठावें। हाथ-पैरों के पंजे जितने पास-पास आ सकें, उतने लाने का यत्न करें। यह आसन खड़ा होकर पीछे से हाथों को जमीन पर रखने से भी होता है।

फल : कमर और पेट के स्थान को इससे अधिक लाभ पहुँचता है, जिसका पृष्ठवंश सदा आगे की ओर झुकता है, उसका दोष इस आसन द्वारा विशुद्ध झुकाव होने से दूर हो जाता है।

(12) **शीर्षासन** : जमीन पर एक मुलायम गोल लपेटा हुआ वस्त्र रखकर अपने मस्तक को उस पर रखें। फिर दोनों हाथों के तलों को मस्तक के पीछे लगाकर शरीर को उलटा ऊपर उठाकर सीधा खड़ा कर दें, इसे 'शीर्षासन' कहते हैं। प्रारम्भ में किसी दीवाल आदि के सहारे करते हुए अभ्यास बढ़ाना चाहिये। इसमें सिर नीचे और पाँव ऊपर होता है। अतः इसे 'विपरीतकरणी मुद्रा' भी कहते हैं। कोई-कोई शीर्षासन को 'कपाली' नाम से भी पुकारते हैं। पैर से सिर तक सारा शरीर एक लम्बी सीधी रेखा में होना चाहिये। इस आसन में पैरों की ओर से रक्त का प्रवाह मस्तिष्क की ओर होने लगता है। इसलिए इस आसन को करने के बाद शवासन करना चाहिये, जिससे रक्त की गति सम हो जावे। पद्मासन के साथ भी इसे किया जा सकता है।

जिनका मस्तिष्क निर्बल और उष्ण रहता है, नेत्र सदा लाल रहते हैं, जिन्हें उरःक्षत, क्षय, हृदय की गतिवृद्धि, श्वास रोग का तीक्ष्ण प्रवाह, वमन, हिक्का, उन्माद आदि रोग हों, उनके लिये यह आसन हानिकारक है, अतः उन्हें नहीं करना चाहिये। भोजनोपरान्त या रात्रि में इसका अभ्यास करना हानिकर होता है।

फल : इस आसन का अभ्यास करने से वात, पित्त और कफदोष से उत्पन्न सब रोग, ज्वर, कास, श्वास, उदर रोग, कटिवात, अर्धांग, ऊरुस्तम्भ, वृषणवृद्धि, नाड़ीव्रण, भगंदर, कुष्ठ, पाण्डु, कामला, प्रमेह तथा अन्त्रवृद्धि आदि रोग दूर होते हैं। शारीरिक निर्बलता दूर हो जाती है और शरीर नीरोग और ऊर्जस्वी हो उठता है।

(13) **शवासन** : शरीर के सब अंगों को ढीला करके मुर्दे के समान लेट जाय। शव के समान निश्चेष्ट लेट रहने से इसे 'शवासन' कहते हैं। सब आसनों के पश्चात् थकान दूर करने और चित्त को विश्राम देने के लिए इस आसन को करें। (क्रमशः)

'सिद्धयोग' के आय–व्यय का विवरण

वर्ष 2006–07

आय

वार्षिक शुल्क	98265.00
आजीवन शुल्क	24625.00
सहयोग	
राजेश गर्ग, पानीपत	1100.00
आनन्द शर्मा, आगरा	321.00
श्रीकृष्ण, कालपी	500.00
अश्विनी कुमार, दिल्ली	250.00
जे.पी. गुप्ता, गंगापुर सिटी	1001.00
सज्जन अग्रवाल, झरिया	151.00
रामचन्द्र मलिक, करनाल (हरि.)	606.00
ओम प्रकाश, सिरसा (हरि.)	5411.00
प्यारे लाल, दिलीपपुर	101.00
डॉ. अनिरुद्ध प्रधान, गाजीपुर	1500.00
राधेश्याम सोनी, प्रतापगढ़	51.00
दिनेश शर्मा, औरा	1000.00
सत्यनारायण वत्स, दिल्ली यूनि.	501.00
राजेन्द्र तिवारी, मुरार (ग्वा.)	251.00
पिछले वर्ष का अग्रिम (विशेषांक हेतु)	7000.00
योग :	1,42,634.00

व्यय

प्रिंटिंग प्रेस व कागज खर्च	1,00,305.00
टिकिट व रिक्शा आदि खर्च	9562.00
शेष सेविंग में जमा	32430.00
नकद रोकड़ जमा	337.00
योग :	1,42,634.00

योग एवं अध्यात्म के अलौकिक प्रभाव से अधिकाधिक जन लाभान्वित हों और ऐसा कर अपने जीवन को धन्य बना सकें ऐसा लक्ष्य सामने रखकर ही परमपूज्य गुरुदेव जी द्वारा 'सिद्धयोग' का प्रकाशन प्रारम्भ किया गया था। प्रभुजी की अनुकम्पा और गुरुभाई–बहिनों के सामूहिक सहयोग से इसका प्रकाशन अनवरत हो रहा है। पत्रिका प्रकाशन के आर्थिक पक्ष को सबल बनाने के लिए विज्ञापन स्वीकार न करके अधिकाधिक सदस्यता शुल्क प्राप्त करना ही अपनी नीति रही है। आपसे अपेक्षा है कि आप अपने–अपने क्षेत्र में अधिक से अधिक ग्राहक बनाकर पत्रिका को नये आयाम देने में अपना सहयोग प्रदान करें। आजीवन सदस्यता अधिकतम दस वर्ष की अवधि के लिए निर्धारित की गयी है। शेष सदस्यता–शुल्क यथावत् रहेंगे। जिन महानुभावों ने अभी तक सदस्यता शुल्क नहीं भेजा है, वे यथाशीघ्र भेजें।

–प्रकाशक

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

APRIL 2007

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना -

निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा

1. डाक वस्तुओं पर मोहर अंकन (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बक्सों पर स्थान का प्रावधान (स्पॉन्सरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रावधान (स्पॉन्सरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेन्टिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के फर्शों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

प्रेषक :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566

सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा